इस माला में अब तक प्रकाशित हिन्दी पुस्तिकाएँ

लक्ष्मीनाथ बेज़बरुआ : हेम बरुआ / **बंकिमचन्द्र चटर्जी** : सुबोधचन्द्र सेनगुप्त / **बुद्धदेव बसु** : अलोकरंजन दासगुप्त / **चण्डीदास** : सुकुमार सेन / **ईश्वरचन्द्र विद्यासागर** : हिरण्मय बनर्जी/**जीवनानन्द दास** : चिदानन्द दासगुप्त/**काज़ी नज़रुल इस्लाम** : गोपाल हाल्दार / **महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर** : नारायण चौधुरी / **माणिक बन्द्योपाध्याय** : सरोजमोहन मित्र/**प्रमथ चौधुरी** : अरुणकुमार मुखोपाध्याय /**राजा राममोहन राय** : सौम्येन्द्रनाथ टैगोर / **ताराशंकर बन्द्योपाध्याय** : महाश्वेता देवी / **सरोजिनी नायडू** : पद्मिनी सेनगुप्त / **तरुदत्त** : पद्मिनी सेनगुप्त / **गोवर्धनराम** : रमणलाल जोशी / **मेघाणी** : वसन्तराव जटाशंकर त्रिवेदी / **नानालाल** : उमेदभाई मणियार / **नर्मदाशंकर** : गुलाबदास ब्रोकर / **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र** : मदन गोपाल / **बिहारी** : बच्चन सिंह / **देवकीनन्दन खत्री** : मधुरेश / **जयशंकर प्रसाद** : रमेशचन्द्र शाह / **महावीरप्रसाद द्विवेदी** : नन्दकिशोर नवल / **जायसी** : परमानन्द श्रीवास्तव/ **प्रेमचन्द** : प्रकाशचन्द्र गुप्त /**राहुल सांकृत्यायन** : प्रभाकर माचवे/**रैदास** : धर्मपाल मैनी / **श्यामसुन्दरदास** : सुधाकर पाण्डेय / **सुभद्रा कुमारी चौहान** : सुधा चौहान / **बी० एम० श्रीकंठय्य** : ए० एन० मूर्तिराव / **बसवेश्वर** : एच० थिप्पेरुद्रस्वामी/ **विद्यापति** : रमानाथ झा/**ए० आर० राजराज वर्मा** : के० एम० जॉर्ज/ **चन्दु मेनन** : टी० सी० शंकर मेनन / **कुमारन् आशान** : के० एम० जॉर्ज / **महाकवि उल्लूर** : सुकुमार अषिकोड / **वल्लत्तोल** : बी० हृदयकुमारी / **दत्तकवि** : अनुराधा पोतदार/ **ज्ञानदेव** : पुरुषोत्तम यशवन्त देशपाण्डे / **हरि नारायण आपटे** : रामचन्द्र भिकाजी जोशी / **केशवसुत** : प्रभाकर माचवे / **नामदेव** : माधव गोपाल देशमुख / **नरसिंह चिन्तामण केलकर** : रामचन्द्र माधव गोले / **श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर** : मनोहर लक्ष्मण वराडपांडे / **फकीरमोहन सेनापति** : मायाधर मानसिंह / **राधानाथ राय** : गोपीनाथ महन्ती/**सरलादास** : कृष्णचन्द्र पाणिग्राही/**भाई वीर सिंह** : हरबंस सिंह/ **जाम्भोजी** : हीरालाल माहेश्वरी / **मुहतां नैणसी** : बृजमोहन जावलिया / **सूर्यमल्ल मिश्रण** : विष्णुदत्त शर्मा/**बाणभट्ट** : के० कृष्णमूर्ति/**भवभूति** : गो० के० भट/**जयदेव** : सुनीतिकुमार चटर्जी / **कल्हण** : सोमनाथ धर / **माघ कवि** : चण्डिकाप्रसाद शुक्ल/ **सचल सरमस्त** : कल्याण बू० आडवाणी / **शाह लतीफ़** : कल्याण बू० आडवाणी/ **भारती** : प्रेमा नन्दकुमार/**इलंगो अडिगल** : मु०वरदराजन/**कम्बन** : एस०महाराजन/ **माणिक्कवाचकर** : जो० वंमीकनाथन / **पोतन्ना** : दिवाकर्ल वेंकटावधानी / **वेदम वेंकटराय शास्त्री** : वेदम वेंकटराय शास्त्री (कनिष्ठ) / **गुरजाड** : नार्ल वेंकटेश्वर राव/**वीरेशलिंगम्** : नार्ल वेंकटेश्वर राव / **वेमना** : नार्ल वेंकटेश्वर राव / **ग़ालिब** : मु० मुजीब ।

साहित्य

नर्मदाशंकर

गुलाबदास ब्रोकर

भारतीय साहित्य के निर्माता

नर्मदाशंकर

भारतीय साहित्य के निर्माता

नर्मदाशंकर

लेखक
गुलाबदास ब्रोकर

अनुवादक
आलोक मेहता

साहित्य अकादेमी

NarmadaShankar : Hindi translation by Alok Mehta of Gulabdas Broker's English monograph. Sahitya Akademi, New Delhi, Second Edition (1982)

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : १९७९
द्वितीय संस्करण : १९८२

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय :
रवीन्द्र भवन, ३५, फ़ीरोज़शाह रोड, नई दिल्ली-११०००१

क्षेत्रीय कार्यालय :
ब्लाक V-बी, रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम, कलकत्ता-७०००२९

२९, एल्डाम्स रोड (द्वितीय मंज़िल), तेनामपेट, मद्रास-६०००१८

१७२, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई-४०००१४

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

मुद्रक :
भारती प्रिण्टर्स,
दिल्ली-११००३२

मादाम सोफिया वाडिया को
जिन्होंने इस महान् व्यक्ति के
अध्ययन के लिए प्रेरित किया

१

भारत में ब्रिटिश राज के पूरी तरह जम जाने से पहले उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में लोग जिन स्थितियों में रह रहे थे, वे दुःखद ही नहीं दिल दहला देने वाली भी थी। उस समय घोर अज्ञान छाया हुआ था और शिक्षा का प्रभाव बहुत कम था। लोगों का दृष्टिकोण सामन्ती और मध्ययुगीन था। सामाजिक जीवन निम्नतम स्तर पर पहुँच गया था। स्त्रियों को दूसरे दर्जे का नागरिक समझा जाता था और वे कठिन परिश्रम, खटने और घुटन वाली ज़िन्दगी जीती थीं। सब तरफ गन्दगी और बीमारियों का जोर था। अंधविश्वासों ने सब को गुलाम बना रखा था। कहीं भी उदार दृष्टिकोण और जागरूक अभिव्यक्ति नहीं दिखती थी।

उन दिनों में सूरत गुजरात का एक महत्वपूर्ण शहर था। लेकिन उसके बावजूद वहाँ भी समान परिस्थितियाँ थीं। शहर में रात को अँधेरा होने के बाद किसी के लिए भी घर से बाहर निकल पाना कठिन होता था। यदि किसी को जाना भी होता, तो उसे अपने साथ जलता हुआ दीपक साथ रखना पड़ता। संयोग-वश यदि दीपक बुझ जाता, जिसकी पूरी सम्भावना रहती थी, क्योंकि उसके लिए चारों ओर से चल रही तेज़ हवाओं से छिपाने का कोई साधन रहता नहीं था, तब घर से बाहर निकलने वाले व्यक्ति पर गहरा आतंक छा जाता क्योंकि तब उसके लिए हर पेड़ राक्षस और हर सड़क भूत-प्रेत होती। १९६८ में गुजराती का पहला उपन्यास 'कारन घेलो' के रचयिता महान लेखक नन्दशंकर मेहता की जीवनी लिखने वाले उनके पुत्र और बीसवीं शताब्दी के आई० सी० एस० अफ़सर विनायक नन्दशंकर मेहता ने अपनी पुस्तक 'नन्दशंकर जीवन चित्र' में उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान सूरत की परिस्थितियों का विस्तृत चित्रण किया है। पुस्तक के पृष्ठ २८-२९ पर उन्होंने कहा है—

"रात अँधेरी और उचाट है। आकाश में चारों ओर गहरे काले मानसूनी बादल छाए हुए हैं, जो तारों की झिलमिल रोशनी में भी रुकावट डाल रहे हैं। देश में नगरपालिकाओं की स्थापना अब तक नहीं हुई है, इसलिए प्रमुख सड़कों पर भी प्रकाश का चिह्न तक नहीं है। सड़कें असामान्य और गड्ढों से घिरी हुई हैं। ऐसी ही एक सड़क पर एक किशोर बालक हाथ में लालटेन लिये तेज़ी से जा रहा है। वातावरण में राक्षसों और भूत-प्रेतों का आतंक बराबर बना हुआ है। यों तो ऐसा लग रहा है जैसे उसमें कुछ साहस है, लेकिन उसके दिल की धड़कनें तेज़ी से चल रही हैं। लम्बे डग न भर पाने के कारण जल्दी-से-जल्दी पहुँच जाने की उसकी इच्छा पूरी नहीं हो पा रही है। इसी समय, ऐसा लगा जैसे उसके पीछे

से किसी की आवाज़ आई। 'कृपया एक क्षण के लिए रुको।' यह कोई महिला लग रही है। लड़का चौंक जाता है। उसकी हिम्मत छूटती दिखती है। "हे भगवान, यह किसी ऐसी औरत का प्रेत होगा जो बच्चे को जन्म देते समय मर गई होगी।" उसके पैर लड़खड़ाने लगते हैं। बहुत कोशिश करके वह अपने को सम्भाल पाता है और तेज़ी से गायत्री मंत्र का जाप करने लगता है, वह आवाज़ वाली दिशा में बढ़ता है वहाँ एक इमारत के बाहरी हिस्से में एक औरत बुझा हुआ दीपक लिये खड़ी है। वह अनुरोध करती है—"मेरे दीपक की रोशनी चली गई है। कृपा करके अपने लालटेन की ज्योति से इसे फिर से जला दो।" वह अपनी साड़ी का पल्ला भी दीपक के पास कर लेती है, ताकि हवा से वह फिर न बुझ पाए। लड़का अपनी लालटेन के ढक्कन को हटाता है और उसके दीपक को जलाने लगता है। लेकिन तभी, हवा का एक तेज़ झोंका आता है और दोनों दीपक बुझ जाते हैं। लड़के ने किसी तरह उस समय तक हिम्मत की थी, लेकिन अब वह भयभीत होकर जान बचाने के लिए भाग पड़ता है।"

लोग केवल इसी तरह के अंधविश्वासों में ही नहीं रहते थे। जब पहली बार रेलगाड़ी आई, तो लोगों ने सोचा कि वह एक विशाल दैत्य है और लोहे की जंजीरों में जकड़कर ले जाएगा। जब नर्मदा पर पुल बनाया गया, तो लोगों ने सोचा कि नास्तिक ब्रिटिश सरकार नदियों की महान देवी नर्मदा की पवित्रता को नष्ट करने की कोशिश कर रही है। वे उस समय प्रसन्न हुए जब पुल के उद्घाटन के समय रेल का इंजिन तकनीकी कारण से बीच में जाकर रुक गया। वे एक साथ चिल्लाए—"ठीक है, अब देवी ने अपना रोष प्रकट किया है।" लेकिन जब इंजिन पुनः आगे बढ़ने लगा, तो वे स्तब्ध रह गए। तुरन्त एक विपरीत प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने सोचा—'यहाँ यह दैत्य नहीं है, बल्कि कोई दैवी शक्ति है। आओ चलें और इसकी पूजा करें।' वे सचमुच गए और माला पहनाकर उस पर कुमकुम लगाया। (मेरी कारपेन्टर : सिक्स मन्थ्स इन इंडिया (१६६८) पृष्ठ २७-२८)।

ऐसे अंधविश्वास वाले जीवन में लोगों के अज्ञान का लाभ उठाने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलना आश्चर्य की बात नहीं हो सकती। इस सम्बन्ध में धार्मिक गुरु और पुजारियों से बढ़कर योग्य कौन हो सकता था, जो अपने को भगवान श्रीकृष्ण का असली अवतार बताते थे? उनमें से कुछ ऐसे विशेषाधिकारों का उपयोग करते थे, जो काम भ्रष्टतम व्यक्ति भी करने से हिचकिचा सकते थे। वे चारित्र्य का पाठ पढ़ाते थे, लेकिन स्वयं चरित्रहीन जीवन बिताकर दावा करते थे कि उन्हें शास्त्रों में वह सब करने की स्वीकृति मिली हुई है। उनके अनुयायी प्रसन्नता से उनकी सारी माँगें पूरी करते थे और कट्टरपंथी स्त्रियाँ भी जो उनकी माँग के सामने झुकती थीं, इसे आशीर्वाद समझती थीं। इस विशेषाधिकार प्राप्त उच्च

वर्ग को चुनौती देना कठिन था, जो समाज सुधार की कोई भी बात सामने आने पर अपना मुँह मोड़ लेते थे। उन्होंने लड़कियों के लिए शिक्षा की बात नहीं सुनी और जब नए वातावरण के प्रभाव में किसी ने ऐसी बात सोचने की हिम्मत भी की, तो उन्होंने घोषित किया कि जो लड़की लिखना-पढ़ना सीखेगी, वह अपने जीवन में विधवा हो जाएगी। समाज में वैधत्व से बढ़कर कोई अभिशाप नहीं हो सकता था। लोग अपनी बहन-बेटियों के विधवा होने की कल्पना से ही घबरा गए और उन्होंने महिलाओं के जीवन में शिक्षा की बात भी सुननी नहीं चाही।

जातीयता का प्रभाव सर्वोपरि था। जीवन में इसका गहरा प्रभाव होता था। जिन्होंने इस व्यवस्था को भंग करने की रंच मात्र भी कोशिश की, उन्हें गम्भीर परिणाम भुगतने पड़े। जिन्होंने इस व्यवस्था के प्रति उदासीनता दिखाई, उन्हें समाज में पुनः जगह पाने के लिए अनुष्ठान और प्रायश्चित करने पड़ते थे, जो निम्नतम स्तर का अपमान जैसा होता था।

शिक्षा लगभग स्थिर हो गई थी। बहुत थोड़े स्कूल थे और जहाँ प्राथमिक विषयों को प्राथमिक ढँग से पढ़ाया जाता था। नई व्यवस्था में वह परिचय मात्र होता था। जो शिक्षक सार्वजनिक रूप से यह पढ़ाते थे कि पृथ्वी गोल है, अपने शिष्यों को व्यक्तिगत रूप से समझाते थे कि यह सब झूठ है और परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए है। वे कहते—"यदि पृथ्वी सचमुच गोल होती और घूमती रहती तो हमारे सब मकान हिलकर गिर गए होते।" (महीपात्रम : दयाराम चित्र पृष्ठ ८)।

जो व्याकरण पढ़ाया जाता था, वह समान रूप से प्राथमिक ढँग का होता था और भाषा अथवा साहित्य में समुचित शिक्षा का अभाव ही था। जहाँ तक गुजराती का सवाल है, गद्य का नामोनिशान नहीं था, जबकि मध्ययुग के दौरान गुजराती भाषा कविता के क्षेत्र में काफी आगे बढ़ गई थी। कोई गुजराती भाषा या साहित्य के अध्ययन की सोचता ही नहीं था, क्योंकि समाज के बुद्धिजीवियों ने भाषा के सम्बन्ध में कुछ सोचा ही नहीं। बृजभाषा, संस्कृत अथवा पारसी का अध्ययन ही उनके लिए सब कुछ था।

इससे अधिक भी बहुत कुछ कहा जा सकता है, लेकिन कुल मिलाकर संक्षिप्त में ब्रिटिश राज की स्थापना से पहले १९वीं शताब्दी में यह परिस्थिति भारत में, विशेष रूप से गुजरात में बनी हुई थी। शताब्दी का तिहाई हिस्सा पूरा होने के बाद अँग्रेज़ी के नए विचारों, जीवनयापन के नए रास्तों और आदर्शों से तथा उन विचारों को अपनाने वाले कुछ नए लोगों के सामाजिक जीवन में प्रभावशाली होने से उन परिस्थितियों में धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहा था। परिवर्तन के पक्ष-धरों में एक प्रमुख नाम था—दुर्गाराम मेहताजी (१८०९-१८७८) एक छोटे से शिक्षक लेकिन महान व्यक्ति और दूसरे एक कवि पुरुष दलपतराम ढायाभाई

(१८२०-१८९८)। उन्होंने सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन को गति दी और लोगों को क्षणैः क्षणैः अपने अज्ञान का बोध होने लगा। नई पद्धति में शिक्षा की शुरुआत-भर हुई थी और इस क्षेत्र में ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति की आवश्यकता थी, जो अपनी कल्पना और कार्यों से स्थिति को सम्भाले तथा सम्पूर्ण वातावरण में क्रांति ला दे।

ऐसे व्यक्ति के आने में बहुत देरी नहीं थी। २४ अगस्त, १८३३ को उसका जन्म गुजरात के सूरत नगर में हुआ। उसका नाम था नर्मदाशंकर लालशंकर दवे।

२

नर्मदाशंकर का जन्म सूरत में हुआ, लेकिन उनका अधिकांश प्रारंभिक जीवन सूरत और बम्बई में बीता। उनकी प्रारंभिक स्कूली शिक्षा भी बम्बई में हुई।

उनके पिता लालशंकर दवे सूरत के एक सम्पन्न परिवार से सम्बन्धित थे। वह जाति से नागर ब्राह्मण होने के कारण थोड़ी बहुत शिक्षा-दीक्षा के हकदार थे। वह गुजराती जानते थे लेकिन संस्कृत से भी उनका अच्छा-खासा परिचय हो गया था। उनकी हस्तलिपि असाधारण रूप से अच्छी थी।

उन दिनों में प्रकाशन का सारा काम लिथोग्राफ द्वारा होता था, इसलिए अच्छी हस्तलिपि वाले लोगों की बहुत माँग हुआ करती थी। उसी समय बम्बई में केप्टन जेविस स्कूली छात्रों के लिए पाठ्यपुस्तकें तैयार करने के काम में लगे हुए थे और उन्हें इस कार्य के लिए अच्छी हस्तलिपि वाले कुछ लोगों की तलाश थी। इस सम्बन्ध में उन्होंने सूरत के न्यायाधीश श्री जानसन को भी कुछ ऐसे लोग खोजकर बताने को लिखा था, जो गुजराती में सही ढँग से लिख सके। उन्होंने उनके लिए बम्बई में अच्छे रोज़गार का वायदा भी किया था। श्री जानसन ने इस कार्य के लिए सूरत के लोगों हेतु एक सार्वजनिक परीक्षा की घोषणा की। अन्य लोगों के साथ लालशंकर दवे भी इस परीक्षा में सम्मिलित हुए। वह चुने गए उन दस लोगों में से एक थे, जिन्हें इस काम के लिए चुना गया। तभी एक कठिन परिस्थिति पैदा हो गई। उनके पिता गम्भीर रूप से बीमार हो गए और माँ इस नौकरी के लिए बेटे के इतने दूर बम्बई जाने की बात सुनने तक को तैयार नहीं थी। इस नौकरी के लिए ३० रुपए वेतन का प्रस्ताव था, जो उन दिनों बहुत में अच्छे स्तर का वेतन समझा जाता था लेकिन माँ की अस्वीकृति के कारण लालशंकर इस प्रस्ताव को ठुकराने ही वाले थे कि एक और घटना हो गई। उनके पिता का भतीजा उसी समय आया। उसने परिवार को करीब छः

हजार रुपए का ऋण दिया हुआ था और उसे यह लगा कि यदि इस युवक ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया तो उसकी रकम वापिस नहीं मिल पाएगी। उसने परिवार में कुछ ताने कसे और कटाक्ष किए। वह तो अपने घर वापस चले गए, लेकिन इस युवक ने तुरन्त नौकरी स्वीकार करने का निश्चय किया।

इस तरह लालशंकर उस समय बम्बई में थे, जब उनका पुत्र नर्मदाशंकर स्कूल जाने योग्य उम्र में पहुँच गया था। उसे एक छोटे स्कूल में भर्ती कर दिया गया, जहाँ वह कुछ विषयों में बहुत अच्छा हो गया था और अपनी पढ़ाई में रुचि ले रहा था। लेकिन उसकी स्कूली शिक्षा नियमित नहीं हो पा रही थी, क्योंकि उसे जल्दी-जल्दी बम्बई-सूरत जाना पड़ता था। सूरत में उसे पहली कक्षा से भी ऊपर नहीं चढ़ाया गया, क्योंकि वह वर्णमाला के कुछ अक्षरों का उच्चारण तक नहीं कर सका। लेकिन एक बार जब वह रुकावट समाप्त हो गई, सूरत और बम्बई दोनों ही स्थानों पर उसकी पढ़ाई अच्छी चलने लगी। उसने स्कूल में कुछ पुरस्कार प्राप्त किए और भूगोल एवं खगोल-विद्या की पढ़ाई में बेहद दिलचस्पी ली। इन विषयों की रुचि ने उसे प्रफुल्लित किया और बाद में इसकी झलक उसकी कुछ कविताओं में देखने को मिली। उसने कुछ महाराष्ट्रियन ब्राह्मणों से वेद पढ़ने का प्रयास भी किया, लेकिन उसका ज्यादा प्रभाव नहीं हुआ। बहरहाल इसके बाद में शास्त्रों और शास्त्रीय अध्ययन के प्रति लगाव के लिए एक नींव-सी पड़ गई।

११ वर्ष की उम्र तक उसकी शिक्षा विभिन्न स्कूलों में हुई। यही सीखने की इच्छा, पुरस्कार जीतने की क्षमता और बहुत जल्दी उत्तेजित होने वाला उसका व्यक्तित्व बना। उसका यह शर्मीलापन प्रारंभिक जीवन में शिक्षा के अलावा अन्य क्षेत्रों में भी बना रहा। वह लोगों के बीच खुलता नहीं था। वरन हर काम अपने ढँग से करना पसन्द करता था। यदि ऐसा नहीं होता था, तो वह लड़ाई-झगड़ा या शोर नहीं करता, बल्कि मुँह बन्द कर चुपचाप बैठ जाता। उन दिनों में जब अपरिचित लोग आ जाते थे, तो वह माँ के पीछे जाकर छिप जाता था। उसकी माँ बहुत निडर स्त्री थी, जिसने एक ऐसे ढोंगी को घर से खदेड़ दिया था, जो किसी तरह मुँह से आग निकालने और अन्य चमत्कारों से उसके पति को प्रभावित कर गया था और पति ने साधु को कुछ कपड़ा देने को कह दिया था। उसने साधु का खेल समझ लिया और उसे इस तरह लताड़ा कि वह फिर कभी पलट कर नहीं आया। नर्मदाशंकर ने अपनी आत्म-कथा में इस घटना का जिक्र किया है और इस घटना ने निश्चय रूप से उनके जीवन में ढोंगी और अन्य धार्मिक लोगों से निपटने के लिए अच्छा सबक दिया।

उन दिनों की परम्परानुसार ११ वर्ष की उम्र में ही नर्मदाशंकर का विवाह सूरत के सूरजराम शास्त्री की सुपुत्री से हो गया। इसका उनकी दिनचर्या या

जीवन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ, क्योंकि उनकी पत्नी युवावस्था होने तक अपने पिता के घर ही रही। इसलिए विवाह के बावजूद यह किशोर छात्र पढ़ाई में लगा रहा।

देशी भाषा की स्कूली शिक्षा पूरी होने पर ग्यारह वर्ष चार महीने की उम्र में वह अँग्रेज़ी स्कूल में भर्ती हो गया। इस स्कूल में कुछ अँग्रेजी भाषा के शिक्षक उन छात्रों की कक्षाएँ लेते थे, जो किसी छात्रवृत्ति के लिए पाठ्यक्रम पूरा करना चाहते थे। इससे नर्मदाशंकर को बहुत सहायता मिली, क्योंकि परीक्षाओं में प्रथम आने के कारण वह श्री ग्राहम और श्री राइड जैसे शिक्षकों का प्रिय छात्र बन गया था। उन दिनों की एक घटना से इस किशोर छात्र के आत्मविश्वास का अंदाज लगता है। उसकी कक्षा को श्री ब्लैकवेल नामक एक शिक्षक गणित पढ़ाते थे। नर्मदाशंकर ने बीजगणित का एक सवाल सही-सही हल कर दिया, लेकिन वह पद्धति नहीं अपनाई, जो शिक्षक ने पढ़ाई थी। शिक्षक ने तत्काल उसकी कोशिश को यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि उसने सवाल ठीक तरीके से हल नहीं किया है। इस किशोर बालक ने सोचा कि वह सही था और शिक्षक गलत था, इसलिए उसने शिक्षक से ऊँचे पद वाले श्री मेकदाउगाल के सामने अपनी बात रखी। इन सज्जन को लगा कि छात्र सही था और शिक्षक गलत और उन्होंने यह बात पूरी तरह स्वीकार की। इससे बालक का आत्मविश्वास और बढ़ गया।

नर्मदाशंकर ने इस स्कूल में पाँच वर्षों तक पढ़ाई की और छात्रवृत्ति की परीक्षा में तीसरा स्थान पाकर क्लेअर छात्रवृत्ति प्राप्त की। इस अवधि में उन्होंने बीजगणित, इतिहास और भूगोल के साथ कविता का गहन अध्ययन किया। वह अपनी पढ़ाई में इतने अच्छे थे कि कोई उन्हें अनुत्तरदायी होने का आरोप नहीं लगा पाया। इसके विपरीत एक परीक्षा में उन्होंने १६ रुपयों की पुस्तकों का पुरस्कार जीता, जिसमें उन्हें काव्य, इतिहास और खगोल-शास्त्र की पुस्तकें मिलीं। इन पुस्तकों के बाद के वर्षों में उन्हें इन विषयों में रुचि रखने वाला व्यक्तित्व विकसित करने में अवश्य महत्वपूर्ण योगदान दिया होगा।

इन वर्षों में उन्होंने बहुत अधिक अनुशासित जीवन बिताया होगा। उन दिनों की अनूठी दिनचर्या का वर्णन वह इस प्रकार करते हैं—

"मैं अपने पिता के साथ प्रतिदिन सुबह चार बजे उठ जाता था। उस समय मैं पिछली रात तैयार किए पाठ एक बार पढ़ लेता। उसके बाद मैं संस्कृत पाठों को पढ़ता और तब अपने संस्कृत शिक्षक श्री अम्बाशंकर के पास जाता। वहाँ से मैं सुबह के ८ बजे वापस आकर अभिषेक आदि के बाद प्रार्थना करता। साढ़े नौ बजे मैं अपने पिता के साथ भोजन करता और साढ़े दस बजे स्कूल चला जाता। पाँच बजे वहाँ से वापस आकर मैं छत पर पहुँचकर शीतल-मंद समीर का आनन्द लेता। इसके बाद शाम को जब दीपक जलने लगता, मैं अपनी पढ़ाई में लग जाता।

करीब साढ़े आठ बजे रात्रि को भोजन करके मैं पुनः साढ़े दस बजे तक पढ़ता। श्रावण के महीने में मैं भगवान शंकर के मंदिर में जाता और जन्माष्टमी, शिवरात्रि और ऐसे ही अन्य दिनों पर उपवास करता।"

इस तरह के अनुशासित जीवन ने उन्हें कठोर परिश्रम की क्षमता प्रदान की। लेकिन बाद के जीवन में नर्मदाशंकर का जो स्वरूप सामने आया, वह इस मनोवृत्ति से मेल नहीं खाता। बाद के जीवन में मूर्ति-विरोधी होने का स्वरूप उनके बाल्यकाल में छिपा हुआ था जब वह देवी काली के मंदिर से होते हुए स्कूल जाते थे। मंदिर के पास से गुजरते समय वह हर बार देवी के सामने नतमस्तक होकर बड़बड़ाते, "मैं पापों से भरा हुआ हूँ। माँ, मुझे क्षमा करो और मुझे सद्गुण प्रदान करो।" और तब वह हाथों से अपने गाल भी थपथपाते। ऐसे किसी अवसर पर नजदीक ही कुछ डिब्बे तैयार करने वाले एक व्यक्ति ने उन्हें देख लिया और कहा कि यह काम उन्हें और अधिक ताकत लगाकर करना चाहिए। इससे उन्हें बहुत शर्मिन्दगी हुई। इसके बाद वह चारों तरफ देख लिया करते कि कोई उन्हें देख तो नहीं रहा है और सावधानीपूर्वक एक हाथ से गाल पर तमाचा मारते और दूसरे हाथ से सहला देते। उनका कहना है कि यह सब वह परीक्षा में ऊँची श्रेणी पाने के लिए नहीं, लेकिन किसी तरह यह उनकी आदत-सी बन गई थी। इस तरह की असामान्य आदत के विषय में आधुनिक मनोवैज्ञानिक ही कुछ अधिक बता सकते हैं।

लेकिन आधुनिक मनोवैज्ञानिक सितम्बर १८५० में उत्पन्न भावनाओं को बहुत अच्छी तरह समझ सकते हैं। उनका कहना है कि उस समय उनमें काफी परिवर्तन आ रहा था। यों न तो वह बुरी संगत में घूमते थे और न ही उत्तेजक पुस्तक पढ़ते थे, तब भी उनके दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन आया था। उनका कहना है कि वह स्त्रियों के प्रति आकर्षित होने लगे थे। वह अपनी बिल्डिंग की महिलाओं द्वारा की जाने वाली बातें सुनने के लिए व्यग्र रहने लगे और उससे काफी उत्तेजित भी होते। उन्होंने प्रेम और उससे होने वाले खतरों की कहानियाँ पढ़नी शुरू कर दीं तथा स्त्रियों के साथ मिलने के प्रति भी उनकी दिलचस्पी पैदा हो गई। उनमें से ये विचार गए तो नहीं लेकिन स्वभाव से शर्मीले होने के कारण वह इस सबके अनुकूल नहीं बन पाए। उन्होंने इस कठिन स्थिति से निकल पाने का रास्ता न निकलने से अकेले बहुत कुछ सहन किया।

आखिरकार ईश्वर ने उनकी सहायता की। २३ नवम्बर, १८५० को सूरत में उनकी माँ का निधन हो गया। उनके लिए यह एक गहरा आघात था। कई दिनों तक वह कुछ किए बगैर अपने कमरे की खिड़की के पास बैठकर दिन में सूर्य की बदलती किरणों को देखते रहे। घन्टों तक उनके दिमाग में दुनिया त्यागने के विचार आते और वह इस तरह की कविताएँ गाते रहते। काफी दिनों तक पढ़ने

और स्कूल जाने में उनकी रुचि नहीं रही। वह यह समझ नहीं पा रहे थे कि आखिर किया क्या जाए ?

उन्हीं दिनों में दो बातें हुईं। सूरत से उनके श्वसुर का पत्र आया कि उनकी पुत्री अब बड़ी हो चुकी है और नर्मदाशंकर को सूरत जाकर घर बसाना चाहिए। नर्मदाशंकर के पिता चाहते थे कि वह बम्बई में ही बस जाए, ताकि पिता-पुत्र साथ रह सकें। उसी समय नर्मदाशंकर को कालरा हो गया और इससे सूरत जाने का निश्चय पक्का हो गया। नर्मदाशंकर तुरन्त तैयार हो गए, क्योंकि उन्हें महिला के साथ की आवश्यकता महसूस हो रही थी। सूरत में कुछ काम पाने के उद्देश्य से उन्होंने कालेज छोड़ दिया। उनके अँग्रेजी अध्यापकों ने उन्हें तीन बहुत अच्छे प्रमाण-पत्र दिए। उनमें से एक इतिहास और सामान्य साहित्य के कार्यकारी प्राध्यापक श्री आर० टी० रीड ने प्रमाण-पत्र में लिखा था—

"नर्मदाशंकर लालशंकर, एलफिन्स्टन इंस्टीट्यूशन में अँग्रेजी साहित्य और इतिहास विभाग में पिछले डेढ़ वर्ष से मेरे छात्र थे। उनकी योग्यता और कार्य के सम्बन्ध में शब्दों में कह पाना बिलकुल कठिन है। अँग्रेजी भाषा में उनका ज्ञान असाधारण रूप से अच्छा है और प्राचीन तथा आधुनिक इतिहास में भी उन्होंने योग्यता हासिल की है, लेकिन विशेष रूप से भारतीय इतिहास में उनका ज्ञान अच्छा है। जून १८४९-५० की परीक्षा में वह अपनी कक्षा में तीसरे स्थान पर आए थे और क्लेअर छात्रवृत्ति देकर उन्हें शोधछात्र के रूप में एक वर्ष में उन्होंने सन्तोषजनक कार्य किया है और मुझे इस बात का खेद है कि वह अब (मैं आशा करता हूँ कि सिर्फ़ इसी समय के लिए) बम्बई छोड़ रहे हैं।

वह निश्चित रूप से एक प्रतिभावान युवक है और उनका चरित्र भी मेरी जानकारी के अनुसार बहुत अच्छा रहा है।"

एलफ़िन्स्टन इंस्टीट्यूशन, १४ फ़रवरी, १८६१।

ऐसे महत्वपूर्ण कागज़ लेकर वह अपने जन्मस्थान सूरत रवाना हो गए।

३

सूरत जाने से पहले नर्मदाशंकर, खाली नहीं बैठे थे। पढ़ाई के साथ-साथ बम्बई में अपने कमरे में वह दो-तीन मित्रों के साथ रसायन-शास्त्र से प्रयोग करते रहते थे। इससे उनको अधिक पढ़ने की प्रेरणा भी मिलती थी। उन लोगों ने कुछ पुस्तकें इकट्ठी कीं और नर्मदाशंकर के कमरे में पुस्तकालय-सा बना डाला। इस पुस्तकालय और पढ़ने की आदत से उन्हें नए-नए विचार मिलते रहे। उन्हें यह

अनुभव हुआ कि अँग्रेज़ शासक लोग इसलिए मज़बूत और प्रभावशाली हैं, क्योंकि वे इतना अधिक पढ़ते और तब विभिन्न महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा भी करते थे। वे इस दिशा में क्या नहीं कर सकते ? इस तरह उन्होंने महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा के लिए महीने में चार बार मिलने का निश्चय किया। ऐसी दो बैठकों में उन लोगों ने अपने ही निबन्ध पढ़े और दो बैठकें सार्वजनिक सभा के रूप में हुईं, जिसमें लोगों को सामाजिक सुधारों के सम्बन्ध में बताया गया, क्योंकि ये युवक अनुभव करते थे कि भारतीय लोगों की अपेक्षा सामाजिक दृष्टि से अधिक प्रगति करने के कारण ही अँग्रेज़ उन पर राज कर रहे थे। उन दिनों में सामाजिक सुधार की बहुत चर्चा होने लगी थी।

इन विचारों को व्यवहार में लाने के लिए इन युवकों ने एक संस्था की स्थापना की और उसे नाम दिया 'जुवान पुरुषोनी अन्योन्य बुद्धिवर्द्धक सभा' यानी युवकों के लिए पारस्परिक ज्ञान देने वाली संस्था। उन लोगों ने नर्मदाशंकर को इसका पहला अध्यक्ष चुना।

अध्यक्ष बनने के बाद हुई पहली सार्वजनिक सभा में नर्मदाशंकर ने अपना पहला सार्वजनिक भाषण दिया। भूलेश्वर के पास एक सभागृह था, जिसे कुछ मित्रों ने उनकी गतिविधियाँ संचालित करने के लिए उन्हें दे दिया था। इस सभा-गृह में करीब १०० लोग आ सकते थे। इतनी संख्या में आए लोगों के समक्ष ही इस उत्साही युवक ने संस्था गठित करने के लाभ पर प्रभावशाली भाषण दिया। यह इतना सफल रहा कि बाद में बम्बई में दिए गए इस तात्कालिक भाषण को, लिखा गया और ४ जुलाई, १८५१ में इसे सूरत में पुनः पढ़ा गया। इसी वर्ष बाद में उन्होंने इसे पुस्तकाकार रूप में एक स्वतंत्र निबन्ध की तरह प्रकाशित कर दिया। प्रकाशन के क्षेत्र में यह उनका पहला प्रयास था और शायद उस समय उन्हें यह अनुभव नहीं हुआ कि गुजराती भाषा में यह पहला उल्लेखनीय गद्य था। किसी भी कीमत पर, लेखक अपनी भाषा में गद्य के पहले महत्वपूर्ण प्रतिपादक और सर्जक थे।

ऐसा लगता है कि १९ फ़रवरी, १८५१ से २ जनवरी, १८५४ तक की तीन वर्षों की अवधि के दौरान इस सुन्दर शहर सूरत में उन्होंने इसके अलावा और कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया। पहले तो उन्हें शिक्षक तक की छोटी-सी नौकरी मिलना ही कठिन हो गया और इस तरह कुछ समय उन्होंने जैसा चाहा अपना समय व्यर्थ ही गँवाया। पिता बम्बई में थे और उनके पास कोई काम नहीं था, इसलिए उनके दिमाग में स्त्रियों के विचार निर्बन्ध नदी के पानी की तरह आते थे। सौभाग्यवश वह अच्छे परिवार की एक समझदार स्त्री के संपर्क में आए, जो उनकी दुःखी आत्मा को सांत्वना दे सकती थी। यह ठीक है कि वहाँ उनकी पत्नी थी, लेकिन उनके अस्तित्व के लिए इस तरह का साहस आवश्यक था, जो कुछ

वर्षों तक चला। कुछ खास काम न होने के कारण उन्होंने अपना ध्यान दूसरी ओर लगाने की दृष्टि से अपने जैसे विचार वाले लोगों की एक सोसायटी बना ली। उन्हें यह सलाह दी गई कि सोसायटी के लिए एक प्रिंटिंग प्रेस ले लिया जाए ताकि उसके सदस्य अपने विचार प्रकाशित रूप में रख सकें। उन्हें यह विचार पसन्द आया और अन्य लोगों की हिस्सेदारी में उन्होंने एक प्रेस भी खरीद लिया। संगठन को नाम दिया गया—'स्वदेश-हितेच्छु' (देश के शुभचिन्तक) और जो साप्ताहिक पत्र उन्होंने आरंभ किया, उसका नाम रखा 'ज्ञान सागर' (ज्ञान का समुद्र)। संगठन ने अपनी बम्बई शाखा की तरह ही सदस्यों के व्याख्यान के कार्य-क्रम आयोजित किए। नर्मदाशंकर ने बम्बई में दिया गया अपना भाषण लिखा और ४ जुलाई, १८५१ को इसे नए लोगों को सुना दिया। एक वर्ष में ही इन युवा लोगों का उत्साह ठंडा हो गया, साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन बन्द हो गया और संस्था भंग कर दी गई।

नर्मदाशंकर को १८५२ में सूरत के पास रांदेड़ में एक छोटे स्कूल में अध्यापक की नौकरी मिल गई। कुछ समय तक तो सूरत और रांदेड़ के बीच बेड़े से यात्रा करने और स्कूल में कुछ अधिक काम न होने पर समुद्र में डुबकियाँ लगाने में उन्हें आनन्द आया। लेकिन जब वह मूड़ में होते, पढ़ाते भी बहुत अच्छी तरह। इसी से एक बार वह कठिन स्थिति से बच गए। एक सुबह वह काम को बहुत सहजता से लेकर आनन्दित हो रहे थे कि किसी पूर्व सूचना के स्कूलों के निरीक्षक श्री ग्राहम आ पहुँचे। छात्र इधर-उधर दौड़ रहे थे और शिक्षक भी वहाँ नहीं था। निरीक्षक कुछ क्रोधित हुए जब उन्होंने देखा कि यह युवा शिक्षक दरवाज़े के पास खड़ा है। बहुत सरलता से यह देखा जा सकता था कि वह अभी-अभी सोकर उठा है। क्रोधी निरीक्षक द्वारा जवाब तलब किए जाने पर शिक्षक ने उत्तर दिया कि पिछली रात देर तक काम करने के कारण यह अनियमितता हुई है। शिक्षक से और अधिक कुछ पूछे बगैर निरीक्षक ने कक्षा लेनी शुरू की और उसे यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि इस कक्षा के छात्र बहुत अच्छे ढंग से सवालों के उत्तर दे रहे थे। बहुत प्रभावित होकर उन्होंने शिक्षक की प्रशंसा की और छात्रों से कहा कि ऐसा शिक्षक पाना उनका सौभाग्य है।

लेकिन नर्मदाशंकर इस तरह के उतार-चढ़ाव और एक सुंदर शहर से दूर रहने के कारण ऊब चुके थे। उन्होंने अपना स्थानांतर सूरत में करा लिया और वहाँ काम प्रारंभ कर दिया। लेकिन छोटे-से स्कूल का शिक्षक मात्र रहना उन्हें नहीं भा रहा था, क्योंकि इससे किसी भी तरह उनके उत्साह और क्षमता का उपयोग नहीं हो रहा था। वह यह नौकरी छोड़कर कहीं कुछ अच्छा और फलदायी काम करना चाहते थे, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। इसी दौरान उनकी १७ वर्षीय पत्नी की एक बच्चे को जन्म देते समय मृत्यु हो गई। पहले से दुःखी

नर्मदाशंकर को सूरत छोड़ने का एक और कारण मिल गया। काफ़ी सोच-विचार और पत्र-व्यवहार के बाद उन्होंने २ जनवरी, १८५४ को नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया और दूसरे ही दिन नौका लेकर अपने सपनों की नगरी बम्बई रवाना हो गए।

सूरत में गुज़ारे इन दुर्भाग्यपूर्ण तीन वर्षों का वर्णन वह इस तरह करते हैं—

"१६ फ़रवरी, १८५१ से २ जनवरी, १८५४ तक की अवधि के दौरान मैंने गुजराती अथवा अँग्रेज़ी की एक पुस्तक तक नहीं पढ़ी। इस अवधि में अँग्रेज़ी में सुनाने के लिए एक पत्र अवश्य तैयार किया, लेकिन इसके अलावा अँग्रेज़ी में कुछ नहीं लिखा। गुजराती में सिर्फ़ तीन व्याख्यान लिखे, इसके अलावा कुछ नहीं। 'ज्ञान सागर' के लिए मैंने कुछ नहीं लिखा। यह काम दौलतराम किया करते थे। मैं तमाखू पीता, मिठाई खाता (मैं और कोई नशा नहीं लेता), और राजा की तरह महिलाओं के बीच घूमता रहता। जब मैं अकेला होता, मेरा समय प्रसिद्धि (पैसा नहीं) और प्यार पाने के रास्तों के बारे में सोचते हुए गुजरता। तब मेरे पास सामाजिक सुधारों अथवा उन्हें लाने के तरीकों और रास्तों के संबंध में कोई विचार नहीं थे।"

यह युवक स्वयं में और अपने साथियों की संगत में इतना तल्लीन था कि उसने उन दिनों सूरत में आए कवि दलपतराम की ओर ध्यान ही नहीं दिया, जबकि वह उन्हें सुनने के लिए भी गया था। वह सिर्फ़ दोस्तों के साथ रहने के लिए, न कि कवि अथवा कविता के प्रति लगाव के कारण। यही नहीं, उसने यदि दलपतराम की ओर देखा भी, तो सिर्फ़ उत्सुकता और नफरत के कारण। उत्सुकता इस बात की कि उन दिनों बहुत कम कवि हुआ करते थे और नापसंदगी इसलिए क्योंकि उनके कार्यक्रमों में से एक में दलपतराम ने अपनी स्वयं की कविता पढ़ने के लिए उस समय, एक नए कवि को रोक दिया था, जबकि उसकी प्रशंसा होने लगी थी। दुर्भाग्यवश यह नापसंदगी जीवनभर बनी रही।

जब वह बम्बई आए, नर्मदाशंकर की उम्र २१ वर्ष की थी और हमेशा की तरह अनिश्चितता की स्थिति में उनका झुकाव साहित्य और समाज-सुधार आंदोलन की ओर हुआ, लेकिन वह सक्रिय किसी में नहीं थे। उनकी इच्छा और अधिक पढ़ने तथा चीज़ों को और अधिक गहराई से समझने की थी। इस कार्य में बम्बई शहर सहायक हो सकता था और इसलिए वह बम्बई चले गए।

४

नर्मदाशंकर जनवरी १८५४ में बम्बई पहुँचे। वहाँ उनके पास न कोई बाहरी काम

था और न ही रोज़गार, जिससे उन्हें कुछ पैसा मिल पाता। लेकिन वहाँ उनके पिता ने उनकी सहायता की। वह इस युवक के लिए कुछ काम निकाल लाए। बम्बई में श्री जीवराज बालु नामक एक सम्पन्न और उदार हृदय व्यक्ति रहते थे। उन्होंने अपने पुत्र को अँग्रेज़ी पढ़ाने और सुबह ११ बजे से शाम ४ बजे तक अपने साथ रहने के लिए इस युवक को ३५ रुपये प्रति माह देने का प्रस्ताव किया। काम हल्का था और रुचिकर भी लेकिन वह लड़का पढ़ना ही नहीं चाहता था। इस सबसे नर्मदाशंकर तंग आ गए और पाँच महीनों में ही उन्होंने यह काम छोड़ दिया, क्योंकि वह ऐसा कोई काम करना नहीं चाहते थे, जिसमें अच्छी तरह काम किए बगैर पैसा मिले। इसके बाद वह स्वयं छात्र हो गए और संस्कृत सीखने के लिए शास्त्री के पास जाने लगे। कुछ महीनों बाद उन्होंने यह भी छोड़ दिया।

इन बातों में पाँच महीने निकल गए। ये पाँच महीने भी इस युवक के व्यर्थ गए, लेकिन दिमाग पूरी तरह सक्रिय रहा। बहुत तेज़ी के साथ विचार आते-जाते रहे। उनके अपने शब्दों में वे विचार इस तरह थे—

"एक ओर, मैं बहुत व्यग्रता से उस दिन का इन्तज़ार कर रहा था जब अपने ज्ञान अधिकार के बल पर प्रसिद्धि प्राप्त कर सकूँ—मैंने कानून पढ़ने के बाद वकालत की परीक्षा में बैठने का सोचा, मैं लोगों को प्रभावित करने के लिए मामलतदार (मजिस्ट्रेट नहीं) बनना चाहता था, मैं सर विलियम जान्स की तरह भाषाविद् होना चाहता था और इसलिए संस्कृत, पारसी, अँग्रेज़ी, उर्दू, हिन्दी, मराठी तथा और अनेक भाषाओं का विशेषज्ञ बनना चाहता था और मैं अँग्रेज लोगों की ट्यूशन कर स्वतंत्र जीवन का आनन्द लेना चाहता था। दूसरी ओर, मैं सूरत में बन गई आदतों और व्यवहार को बदल रहा था, क्योंकि अब मुझे वे मूर्खतापूर्ण लगने लगी थीं। मैं उन आदतों के उदाहरण कल्पित नामों से देकर अपने पिता से पूछा करता था कि क्या यह मूर्खतापूर्ण है। वह उत्तर दिया करते थे कि दुनिया की दृष्टि से यह मूर्खतापूर्ण है, लेकिन वास्तविक ढँग से पश्चाताप करके उन्हें मिटाया जा सकता है। बम्बई आने के कारण मेरे प्रियजन सूरत में ही रह गए थे, और इससे मुझे दुःख भी होता था। इसलिए मेरे दिमाग में जीवन के निरर्थक होने, धन अर्जित करना व्यर्थ लगने और दुनिया त्यागने के विचार भी आते थे उसी मनःस्थिति में कई बार मैं अपने पिता से कह चुका था कि वह अपनी पत्नी को खो चुके हैं और मैं भी, इसलिए क्यों नहीं हम यह दुनियादारी का जीवन त्याग दें? इस सबके बजाय हमें किसी दूरदराज गाँव में जा बसना चाहिए, जहाँ थोड़े-बहुत प्रयासों से हम अपनी दैनन्दिन आवश्यकता पूरी कर लें और किसी नदी अथवा झील के किनारे आनन्द के साथ कुछ ठोस ज्ञान प्राप्त करें।

इसी तरह की मनःस्थिति के दौरान नर्मदाशंकर एक बार नेटिव बुक क्लब नामक पुस्तकालय में बैठे हुए थे। वहाँ उन्होंने आकर्षक व्यक्तित्व वाले एक युवक

को पुस्तकों का आदान-प्रदान करते देखा। किसी तरह नर्मदाशंकर और उस युवक में बातचीत चल निकली। बातचीत के दौरान उस युवक जिसका नाम झवेरीलाल उभियशंकर था, ने अपने इस युवा मित्र को पुनः कालेज में प्रवेश लेने की सलाह दी। उसने बताया कि वह स्वयं भी कालेज जाता है। यह सलाह घर तक पहुँची और नर्मदाशंकर ने एक बार फिर कालेज में प्रवेश ले लिया। उन्हें पढ़ाई बहुत भाई और कुछ परिस्थितियों के कारण दो महीने तक पढ़ाई में गति-रोध होने के बावजूद कड़ी मेहनत के कारण वार्षिक परीक्षा में उन्होंने 'वेस्ट स्कालरशिप' जीत ली, जिसमें प्रतिमाह पन्द्रह रुपए मिलने का प्रावधान था।

इसके बावजूद उनका ध्यान पढ़ाई में केन्द्रित नहीं हो रहा था। उन्हें उन दिनों के एक ही शिक्षक दादाभाई नौरोजी का स्मरण है, जो उन्हें गणित पढ़ाते थे और उन छात्रों की प्रशंसा करते थे जिनका अँग्रेज़ी का ज्ञान अच्छा होता था। वरना वह अपने ही विचारों और कल्पनाओं में खोए रहते थे। वह कल्पना किया करते थे कि वह इंगलैण्ड जा रहे हैं और बहुत बड़े आदमी बनने वाले हैं और इन सब बातों में वह इस तरह खो जाते थे कि अपने शिक्षकों की बातों पर उनका ध्यान मुश्किल से ही जा पाता था। इस तरह की बड़ी-बड़ी बातों और मस्त-मौला स्वभाव के कारण झवेरीलाल और अन्य मित्र उन्हें 'लालाजी' कहा करते थे।

यों वह अपनी पढ़ाई की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं देते थे, लेकिन कविता पढ़ाए जाते समय वह पूरा ध्यान देते हैं। इस तरह की फालकनर की 'शिपरेक' और वर्ड्सवर्थ की कुछ अन्य कविताओं का उन पर गहरा प्रभाव हुआ। वह उन कविताओं के भावों को बहुत पसंद करते थे। 'शिपरेक' कविता में नाविकों की बहादुरी से बहुत रोमांचित हुए। इससे प्रेरित होकर उन्होंने स्वयं एक-सौ पंक्तियों की एक रचना तैयार कर प्रो० रेइड को दिखाई। वह इसे देखकर हँसे, पंक्तियों पर नहीं वरन अँग्रेज़ी में कविताएँ लिखने के विचार पर।

लेकिन बीज तो डल चुका था। उसी वर्ष सितम्बर में उन्हें गुजरात के मध्य-युगीन प्रसिद्ध संत कवि धीर भगत के कुछ पद्य देखने को मिले। वह इससे इतने प्रसन्न हुए कि वह मौके-बेमौके उन्हें गाने लगे। इस काव्य का नर्मदाशंकर के दिमाग पर इतना गहरा प्रभाव हुआ जैसे कोई छूत का रोग लग गया हो। समान भावना पर आधारित कुछ कविताएँ उन्होंने स्वयं लिख डालीं और इससे उन्हें बहुत राहत मिली। उस समय उन्हें सांत्वना की बहुत आवश्यकता थी और इससे उन्हें बहुत संतोष हुआ। उन्होंने स्वयं विचार किया कि वह पढ़ने, कमाने, पत्नी रखने आदि की इच्छा करते थे, लेकिन यह सब का मूल्य तो इसीलिए होता है, क्योंकि वे आनंद देती हैं। कविताएँ बनाने से भी उन्हें आनंद मिलता है, तब क्यों नहीं वह यही करें? उन्हें सिर्फ़ वही करना चाहिए और रोटी की चिंता नहीं

करनी चाहिए, क्योंकि वह तो किसी तरह मिल ही जाएगी। इस भावना से उनके काव्यात्मक जीवन की शुरुआत हो गई, जिसने जीवन में उन्हें नाम, प्रतिष्ठा और नए ढँग से जीने का रास्ता दिया।

उन्हें वह दिन याद नहीं, जब उन्होंने पहले कविता का सृजन किया था। लेकिन उन्होंने इस बात का हिसाब लगाया कि उनका २१वाँ जन्मदिवस कब था, हिंदू केलेंडर के अनुसार वह २१ सितम्बर, १८५५ का था, जब उन्होंने अपने काव्यात्मक जीवन का प्रारंभ किया था।

तब वह लगभग प्रतिदिन कुछ-न-कुछ लिखने लगे।

इस असाधारण कार्य के प्रति पैदा हुई निष्ठा के कारण वह अपनी नियमित गतिविधियों पर पूरा ध्यान नहीं दे पाए और अगली परीक्षा में वह छात्रवृत्ति के अधिकारी नहीं हो पाए। विशेष योग्यता वाले अंक पाए बगैर वह सामान्य श्रेणी में उत्तीर्ण-भर हो गए।

इस परिवर्तन के साथ कुछ अन्य क्षेत्रों में भी उनका ध्यान बँटा। उन्होंने युवकों की अपनी पुरानी संस्था में प्रवेश कर लिया, जिसका नाम बदलकर सिर्फ़ 'बुद्धिवर्धक सभा' रख दिया गया था। अब वह वहाँ सक्रिय हो गए। वहाँ उन्होंने दो या तीन व्याख्यान दिए और सार्वजनिक रूप से अपनी दो-तीन कविताओं का पाठ भी किया। श्रोताओं ने उन्हें आश्चर्यजनक रूप से पसंद किया, जब कि वे इस युवक के मुकाबले में छंद-शास्त्र के नियमों को बहुत कम जानते थे, क्योंकि बम्बई में कोई भी गुजराती में कविता लिखे जाने के संबंध में कुछ नहीं जानता था। यही नहीं, तथ्य को यह है कि इनमें से बहुत कम लोगों ने कवि दलपतराम का नाम सुना था, जो गुजरात के अन्य भागों में बहुत ख्याति अर्जित कर चुके थे। नर्मदाशंकर ने उसी ढँग की कविताएँ लिखी थीं और अन्य कवियों ने उनकी तथा कुछ अन्य लोगों की कविताओं का गहन अध्ययन करने के बाद कविताएँ लिखीं। वह इस बात को बहुत अच्छी तरह समझते थे, लेकिन लोग इस संबंध में कुछ नहीं जानते थे इसलिए वह इस तरह की प्रशंसा को स्वीकारते हुए आनंदित होते थे।

लेकिन वहीं उनके दिमाग में असंतोष भी बना हुआ था। यह ठीक है कि लोग छंद-शास्त्र के नियम-कानून नहीं जानते और उनकी तारीफ करते हैं, लेकिन यदि उन्हें महत्वपूर्ण कवि बनना है, तो उन्हें उन नियमों के अध्ययन की आवश्यकता है। एक मासिक पत्रिका में प्रकाशित एक लेख में उन्होंने पढ़ा कि छंद के लिए बने शास्त्र को पिंगल-शास्त्र कहा जाता है, इसलिए उन्होंने इस शास्त्र की खोज शुरू कर दी।

यह बम्बई में कहीं भी उपलब्ध नहीं था। इसलिए वह क्या करे? क्या उन्हें संस्कृत अथवा प्राकृत में उपलब्ध इस तरह की पुस्तक खोजनी चाहिए? बम्बई में इन भाषाओं में भी वे पुस्तकें नहीं मिलीं। अब क्या उन्हें कवि दलतपराम को पत्र

नहीं लिखना चाहिए, जो लगता है इस विषय में बहुत कुछ जानते होंगे? अच्छा ही होगा कि न लिखा जाए। उन्हें स्मरण हुआ कि इसी व्यक्ति ने सूरत में एक नए कवि की प्रशंसा के दौरान हस्तक्षेप कर अपनी कविता सुनाना शुरू कर दी थी। लेकिन तब क्यों नहीं उस नए कवि को ही लिखा जाए? अब तक वह अनुभवी हो चुका होगा। उन्होंने उस कवि मनमोहनदास रणछोड़दास को बहुत विनम्रतापूर्वक ढँग से एक पत्र लिखा और छंद-शास्त्र पर कुछ पुस्तकें सुझाने तथा इस क्षेत्र में मार्गदर्शन करने का आग्रह किया। उन्होंने यह अनुरोध भी किया कि वह पत्र के साथ भेजी गई कविताओं को सुधार दें और उनके बारे में अपनी राय बताएँ।

नर्मदाशंकर ने व्यग्रतापूर्वक उत्तर का इंतजार किया, लेकिन कोई नहीं आया। वह बहुत निराश हुए, लेकिन उन्हें इस बात से कुछ राहत मिली, जब उन्हें बम्बई के ही एक मित्र से संस्कृत की एक पुस्तक 'श्रुतबोध' मिल गई और एक महाराष्ट्रियन शास्त्री से उसे समझने में भी सहायता मिलना संभव हो गया। इस पुस्तक से उन्हें संस्कृत मापदण्ड का ज्ञान हुआ, लेकिन देशी मात्राओं के बारे में नहीं। गुजराती में अधिकांश काव्य इसी मापदण्ड से लिखा गया था और जब तक उन्हें उसका ज्ञान नहीं होता, उनके प्रयास फलदायक नहीं हो सकेंगे। उन्होंने बुद्धिमानीपूर्वक देशी मापदण्ड से कविता लिखना बंद कर कुछ समय संस्कृत पद्धति से ही कविताएँ लिखीं।

वह समय काट रहे थे। उन्हें कुछ समय बाद ही अपने दूसरे विवाह के लिए सूरत जाना था। वहाँ जाने पर वह निश्चित रूप से पिंगल के बारे में पुस्तक खोज लेंगे और शास्त्रीय पद्धति में कविता लिखने की कला सीख लेंगे।

५

वह सूरत गए और वहाँ मई १८५६ में दाहीगौरी नामक कन्या से उनका विवाह हो गया। विवाह की व्यस्तता और विवाह के रीति-रिवाज में कुछ छोटे सुधारों को लेकर उनका अपने पिता और अन्य बड़े लोगों से हुए विवाद के कारण वहाँ उन्हें छंद शास्त्र की पुस्तक खोजने का समय ही नहीं मिल पाया। विवाह के तुरंत बाद वह बम्बई आ गए, क्योंकि वहाँ उन्हें कालेज जाने और पढ़ाई का काम पूरा करना था? वापस आने के बाद वह पुनः कालेज जाने लगे, लेकिन उनके लिए यह आश्चर्य-सी बात थी कि आगे पढ़ने में उनका मन नहीं लग रहा था। इसके दो कारण थे, एक तो यह कि वह कविताएँ लिखने में अधिक व्यस्त रहते थे

और यह विचार आते रहते थे कि संस्कृत और अँग्रेजी में पुस्तकें लिखकर बड़ा नाम और प्रतिष्ठा पा सकेंगे, दूसरी ओर उनके मन में यह भावना भी आती रहती थी कि अब वह काफी बड़े हो चुके हैं और उन्हें स्वयं कुछ कमाकर घर में पिता को सहयोग करना चाहिए और कालेज में रहकर व्यर्थ समय गँवाने से उन्हें घृणा-सी होने लगी थी। उनके पिता भी इस बात पर ज़ोर दे रहे थे कि वह कोई नौकरी कर लें और खाली समय में कविता के काम और संस्कृत तथा अँग्रेजी का अध्ययन करें। इन सब बातों से उनके मन में यह निश्चय-सा हो गया कि उन्हें कालेज की पढ़ाई छोड़ देनी चाहिए और इसलिए काफी हिचकिचाहट के बाद उन्होंने १९ अगस्त, १८५६ को कालेज छोड़ दिया। उनके प्रिंसिपल श्री हार्कनेस ने उन्हें एक बहुत अच्छा प्रमाण-पत्र दिया।

इसे लेकर उन्होंने एक अच्छी नौकरी की तलाश शुरू कर दी। जब वह कालेज में थे, कच्छ के महाराज ने प्रिंसिपल हार्कनेस को एक पत्र लिखकर अच्छी तरह अँग्रेजी पढ़ा सकने वाला शिक्षक भेजने का आग्रह किया था। इस काम के लिए उन्होंने अच्छे वेतन का प्रस्ताव भी किया था—एक सौ रुपया प्रति माह। श्री हार्कनेस ने इस नौकरी के लिए नर्मदाशंकर की सिफारिश की थी, लेकिन महाराव नागर ब्राह्मण जाति के लोग पसंद नहीं करते थे और इस तरह नर्मदाशंकर नहीं चुने गए। जबकि नर्मदाशंकर वहाँ जाना चाहते थे, क्योंकि उन्हें कहीं से पता चला था कि कच्छ में छन्द शास्त्र पर कुछ पुस्तकें उपलब्ध हैं और वहाँ जाने पर वह उनका अध्ययन कर सकेंगे। उनके मन में यह भी था कि यदि वह कविता के प्रति महाराव की रुचि पैदा कर सके, तो उनकी नौकरी भी सुरक्षित रहेगी और वहाँ कवि के रूप में शांतिपूर्वक जीवन भी व्यतीत कर सकेंगे। उन्होंने एक और नौकरी के लिए कोशिश की, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली।

जल्दी नौकरी नहीं मिलने ने उन्हें निराश नहीं किया। वह कविताएँ लिखते रहे और एक योग्य ब्राह्मण से संस्कृत पढ़ते रहे। उन्होंने पूरा वृत्त रत्नाकर और रघुवंश के कुछ परिच्छेद पढ़ डाले। वह इस तरह व्यस्त थे कि एक दैनिक पत्र में उन्होंने एक घोषणा देखी। इसमें उस लेखक को एक सौ रुपए के पुरस्कार की घोषणा की गई थी, जो वैष्णव गोन्सामजी महाराजा के वंश और इतिहास पर सर्वश्रेष्ठ निबन्ध प्रस्तुत करेगा। नर्मदाशंकर ने प्रतियोगिता में हिस्सा लेकर पुरस्कार जीतने का विचार किया। उन्होंने इस विषय पर कुछ पुस्तकें प्राप्त करने के लिए शास्त्री वैजनाथ से संपर्क किया, जो स्वयं बहुत विद्वान थे और एक बड़े वैष्णव मंदिर के प्रमुख से संबंधित भी थे। मंदिर में वे पुस्तकें अवश्य थीं, लेकिन उन सज्जन के पास इन पुस्तकों को बाहर ले जाने देने का अधिकार नहीं था। इसलिए उन्होंने नर्मदाशंकर को एक सलाह दी। ये सारी पुस्तकें सूरत में उपलब्ध हैं और यदि नर्मदाशंकर वहाँ जाए, तो सरलता से पुस्तकें नहीं भी मिलीं, तो

वहाँ पिंगल पर तो कुछ पुस्तकें अवश्य मिल जाएँगी। इसलिए पिता से अनुमति लेकर वह तत्काल सूरत रवाना हो गए। वहाँ उन्हें वैष्णव महाराजा पर तो कोई पुस्तक नहीं मिली, लेकिन संयोग से देशी पद्धति के संबंध में जिस पुस्तक की उन्हें तलाश थी, वह मिल गई।

कवि के लिए ऐसी पुस्तकों की खोज रोमांचकारी तो थी ही, उनके जीवन के लिए सुनहरे अध्याय की प्रेरक भी थी। इस सफलता ने उन्हें अनेक क्षेत्रों का प्रणेता बना दिया।

अन्य महत्वपूर्ण खोजों की तरह यह खोज भी बिल्कुल संयोगवश हुई थी। सूरत पहुँचने पर उन्होंने अपने एक पुराने साथी को पकड़ा जो उन्हें 'ज्ञान सागर' निकालने में मदद करता था। उन्होंने उसे बताया कि उन्हें इस तरह की पुस्तक की आवश्यकता है और उसे इसके लिए सहायता करनी चाहिए। ये दोनों सूरत शहर में तब तक घूमते रहे जब तक उन्हें एक राजगीर से मिलने का अवसर नहीं मिला, जिसका इस तरह की पुस्तक से कोई लेना-देना नहीं हो सकता था। गोवर्धन नामक यह राजगीर कविता और संगीत का प्रेमी था। कवि ने उसके सामने स्वरचित कुछ कविताएँ सुनाईं और राजगीर प्रसन्न हुआ। फिर उसने स्वयं बताया कि वह एक साधारण व्यक्ति था, लेकिन उसके गुरु लालदास महान कवि थे और उनकी सारी पुस्तकें उसके पास हैं। संभवतः उनमें उस तरह की पुस्तक भी हो सकती है, जिसकी तलाश कवि को है। कवि व्यग्र हो उठे, लेकिन राजगीर ने उन्हें एक दिन और इंतजार करने को कहा। उसने कहा कि वह उनकी पुरानी पाण्डुलिपियाँ देखकर बताएगा कि इस तरह की कोई पुस्तक उसके पास है। कवि दूसरे दिन उसके पास जाने को तैयार हो गया।

जब वह राजगीर के पास पहुँचे, तो उसने उनके देखने के लिए एक पुस्तकों का बड़ा बंडल रख दिया था। कवि ने इन पुरानी पुस्तकों को जल्दी-जल्दी टटोला और उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई जब सचमुच उन्हें इस तरह की पुस्तक मिल गई, जिसका उन्हें इंतज़ार था। इसका नाम था 'छंद रत्नावली'। कवि इस पुस्तक को ले जाने को तैयार थे, लेकिन राजगीर ने यह कहकर रोक दिया था कि वह इस तरह की बहुमूल्य पुस्तक नहीं ले जाने देगा। यदि वह इसका उपयोग करना चाहते हैं, तो वह इसकी प्रतिलिपि बना देने के लिए उन्हें घर आने देगा। नर्मदाशंकर इस बात पर तैयार हो गए और इस पुस्तक की नकल उतारने के लिए दूसरे ही दिन से रोज़ सुबह स्याही-कलम लेकर राजगीर के घर जाने लगे। कुछ दिनों बाद जब उन्हें लगा कि राजगीर अब उन पर विश्वास कर सकता है, उन्होंने इस बात की अनुमति प्राप्त कर ली कि प्रतिदिन वह पुस्तक के कुछ पृष्ठ घर ले जाया करेंगे और अगले दिन उन्हें वापस कर दूसरे पृष्ठ ले जाया करेंगे। इस व्यवस्था से उन्हें बहुत सहायता मिली और कुछ ही दिनों में उन्होंने पूरी पुस्तक

की प्रतिलिपि बना ली, जो बहुत उपयोगी थी, क्योंकि उसमें देशी मात्राओं और पद्धति जैसे दोहों, चौपाई इत्यादि का विस्तृत विश्लेषण था। कवि पूरी पुस्तक को समझ सकते थे, क्योंकि संस्कृत पर उनका अच्छा अधिकार था।

इस तरह सूरत में उन्हें सफलता मिली और वह एक नए विश्वास तथा अनेक नए विचारों के साथ बंबई वापस आए।

नई आशा के साथ उन्होंने बंबई में उत्साहपूर्वक काम शुरू कर दिया। जनवरी १८५७ में वह एक कविता तैयार करने में जुटे हुए थे, जिसमें शिक्षित और अशिक्षित दंपति के तुलनात्मक जीवन की व्याख्या की गई थी, तभी उनके पिता आए और उन्होंने उसी महीने की एक पत्रिका में प्रकाशित दलपतराम की कविताओं की ओर उनका ध्यान दिलाया। पिता यह देखकर विस्मित हो गए कि उनके पुत्र कवि में काव्य शास्त्री की झलक देने वाली कविताएँ लिखने की क्षमता है। नर्मदाशंकर ने हँसकर यही कहा—यह कोई कठिन काम नहीं है। पिता ने उत्तर दिया—'मैं तुम्हें तभी चतुर मानूँगा, यदि तुम पिंगल के संबंध में पुस्तक लिख लो।' नर्मदाशंकर ने तुरन्त वह कविता लिखना रोक दिया, जो वह तैयार कर रहे थे और पिंगल पर पुस्तक लिखने लगे। उन्होंने इसके प्रारंभिक अंश पिता को दिखाए, तो वह बहुत प्रसन्न हुए। अगले कुछ दिनों तक कवि ने यही काम किया और मार्च तक पुस्तक पूरी कर दी। उन्होंने अपने पिता से इसकी दूसरी प्रति बनाने को कहा और अप्रैल के पहले सप्ताह में लिथोग्राफ में इसे प्रकाशित कर दिया।

उनके लेखन की समीक्षा बहुत अच्छी हुई। एक सुप्रसिद्ध साहित्यकार महीपतराम रूपराम ने लिखा कि इस श्रेष्ठतम पुस्तक ने लेखक को प्रसिद्ध कवियों की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया है। कवि दलपतराम ने लिखा—'अब तक किसी ने इस तरह की पुस्तक नहीं लिखी थी, जिसमें काव्य-लेखन की शिक्षा दी गई हो। बंबई के श्री नर्मदाशंकर ने हाल ही में इस तरह की पुस्तक प्रकाशित की है। इस तरह की पुस्तक तैयार करने में उन्हें निश्चित रूप से काफी कठिनाई हुई होगी। गुजराती में यह अपने ढँग की पहली पुस्तक है। इससे प्रोत्साहित होकर नर्मदाशंकर ने एक विद्वान पण्डित से अलंकार शास्त्र की पुस्तकें पढ़ना प्रारंभ किया और उसी वर्ष दिसंबर के अंत तक इसकी पढ़ाई पूरी कर ली।

इस दौरान वह गोकुलदास तेजपाल स्कूल में शिक्षक के रूप में काम भी करने लगे थे। उन्होंने सोचा कि सरकारी स्कूल में पढ़ाना अधिक सम्मानजनक समझा जाएगा। इसलिए उन्होंने इसके लिए आवेदन किया और उन्हें एल्फींस्टोन इंस्टीट्यूशन सेन्ट्रल स्कूल में नौकरी मिल गई।

अगले वर्ष जनवरी के प्रारंभ में उन्होंने अपनी अगली पुस्तक 'अलंकार प्रवेश' पर काम शुरू कर दिया और इसका अध्ययन करने लगे। जून अथवा जुलाई के

अंत तक ये दोनों पुस्तकें प्रकाशित हो गईं।

जो क्षमता और उत्साह उनमें था, इसके अलावा थोड़े ही समय में जितना प्रोत्साहन उन्हें इन पुस्तकों को लिखने के लिए मिला, उसका कारण यह भी था कि तब तक गुजराती भाषा में उस तरह का साहित्य नहीं था। वह जानते थे कि उन्हें यह सारी जानकारियाँ इकट्ठा करने में कितनी कठिनाई हुई और वह यह नहीं चाहते थे कि एक नए व्यक्ति को उन कठिनाइयों का सामना करना पड़े, जिस तरह की कठिनाई उन्होंने देखी थी। इस तरह उन्होंने इस क्षेत्र में गुजराती भाषा में अच्छे कार्य के लिए रास्ता-सा खोल दिया।

इस विद्वत्तापूर्ण कार्य के अलावा, रचनात्मक दृष्टि से उसी वर्ष के अप्रैल और मई माह में कवि की कविताओं के दो संस्करण प्रकाशित हो गए। उनका नाम ठीक ही रखा गया था—'नर्म कविता'—खण्ड एक और खण्ड दो।

लेखन की इस निरन्तर सफलता ने कवि की प्रसिद्धि को बहुत ऊँचाई पर पहुँचा दिया। प्रशंसक लोगों द्वारा उन्हें 'कवि' की सम्मानजनक पदवी दी गई। यह संज्ञा आज १२४ वर्ष बाद भी उनके नाम से जुड़ी हुई है जबकि १८५४ में उन्होंने पहली कविता लिखी थी। उन दिनों की दीप्ति अब बुझ चुकी है, उनके समय से कविता के विचार में बड़ा भारी परिवर्तन आ चुका है, आज के कई पाठकों को उनके लेखन में वास्तविक काव्यात्मकता बहुत कम दिखती है, लेकिन तब भी गुजरात-भर के लोगों के लिए नर्मदाशंकर कवि नर्मदाशंकर हैं।

पहले वह सफलता के पीछे दौड़ रहे थे और अब सफलता उनके दरवाज़े पर थी। यहाँ तक कि प्रसिद्ध कवि दलपतराम भी 'बुद्धिवर्द्धक' पत्रिका के लिए कविताएँ भेजने लगे, जिसका सम्पादन नर्मदाशंकर कर रहे थे और वह भी दलपतराम की शर्तों पर नहीं, वरन सम्पादक की शर्तों पर। यह सफलता नर्मदाशंकर जैसे महत्वाकांक्षी व्यक्ति के लिए कम नहीं थी। उनकी पुस्तकें बिक गईं, उनकी कविताएँ पढ़ी गईं और प्रशंसित हुईं, उनका नाम हरेक की जबान पर था। फिर भी उनके लिए और अधिक महत्वपूर्ण साहित्यिक कार्य तथा प्रसिद्धि के दरवाज़े खुलना बाकी थे। उन परिस्थितियों में, एल्फींस्टोन इंस्टीट्यूशन के सेन्ट्रल स्कूल में सहायक अध्यापक की नौकरी, उन दरवाज़ों को खोलने में बाधक लग रही थी। उन्हें यह अनुभव हुआ कि सुबह साढ़े दस से शाम साढ़े पाँच बजे तक स्कूल के बच्चों का कोलाहल प्रसिद्धि की देवी के मधुर संगीत को शांत कर देता है। उन्हें विश्वास हो गया था कि उन्हें उसके लिए समर्पित होना होगा। उन्हें यह सब छोड़कर शरीर और आत्मा को उसी कार्य के लिए समर्पित करना चाहिए, जिससे उन्हें प्रसन्नता मिले।

उन्होंने अपने मूड़ के संबंध में स्कूल के साथियों से चर्चा की और वे भी उनसे सहमत थे। इससे उनका उत्साह बढ़ा और नौकरी छोड़कर पूरी तरह साहित्य के

लिए समर्पित होने के विचार को बल मिला। धीरे-धीरे उनका यह मूड़ एक इच्छा से दृढ़ निश्चय के रूप में बदल गया। एक बार यह निश्चय हो जाने के बाद उन्हें कोई नहीं रोक सकता था। उन्होंने इस बारे में अपने पिता तक को सूचना देने की चिन्ता नहीं की, लेकिन २३ नवम्बर, १८५८ को अपनी प्रकृति की ओर समर्पित होकर, उन्होंने स्कूल की नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया और अपने को सरस्वती देवी के हाथों में सौंप दिया। अंतिम बार स्कूल से घर आने के बाद अश्रुपूरित नेत्रों से वह कलम की ओर देखकर बदबुदाए—'अब मैं अपने को तुम्हारी शरण में सौंपता हूँ।' वह निश्चय कर चुके थे कि भविष्य में वह किसी मालिक के लिए पूर्णकालिक कार्य न कर सिर्फ़ सरस्वती की सेवा करेंगे।

उनके प्रिय पिता को जब उनके इस निर्णय की जानकारी हुई, तो वह न क्रोधित हुए और न ही कोई आपत्ति की, लेकिन उन्होंने बहुत सहजतापूर्वक इतना ही कहा, 'मेरे बेटे, इतनी जल्दी की क्या आवश्यकता थी?'

लेकिन पासा पड़ चुका था और अब वापसी का कोई प्रश्न नहीं था। नर्मदाशंकर की आयु केवल २५ वर्ष की थी, जब उन्होंने बहुत तेजी से यह कदम उठाया था और इसे सम्भालने का उनके पास कोई दृढ़ आधार नहीं था, कवि के इस ऐतिहासिक निश्चय में जब कोई त्याग की भावना देखता है, तो उसे इस निर्णय की महत्ता भी दिखती है। आज तक यानी वर्ष १९७९ में भी, हर कोई जानता है कि भारत में लेखन पर जीवित रहना कितना कठिन है। उस समय १८५८ में यह कार्य कितना कठिन होगा, जब कि सामान्यतः लोग समाज में काव्य और साहित्य की आवश्यकता तक के बारे में नहीं समझते थे। लेकिन नर्मदाशंकर ऐसे व्यक्ति थे, जो ऐसा निर्णय ले सकते थे और कठिन परिस्थितियों में भी उन पर अडिग रह सकते थे।

लेकिन निर्णय अथवा अनिर्णय, हरेक को अपने को जीवित भी रखना होता है—चाहे वह कवि नर्मदाशंकर ही क्यों न हो। और उनके पास जीविका का कोई किसी तरह का स्थाई रास्ता नहीं था। और इस उम्र में वह अपने पिता पर बोझ नहीं बनना चाहते थे, जो काफी वृद्ध हो चुके थे। तब उन्हें क्या करना चाहिए? उन्होंने सोचा कि उन्हें कविता से मोह है और वह सार्वजनिक नैतिकता तथा समर्पित जीवन में रुचि रखते हैं। वह जीवनयापन के लिए और किसी तरह का काम नहीं कर सकते थे। तब वह 'हरिदासी कथाकार' क्यों नहीं बन जाते? इस तरह वह अपनी जीविका कमाकर ज्ञान के भण्डार को भी बढ़ा सकेंगे। फिर उस समय गुजरात में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था जो हरिदासी पद्धति में कथा कह सकता हो और उनकी तो भाषा और पठन शैली, दोनों ही श्रेष्ठतम थी। इसलिए उन्हें संस्कृत का थोड़ा और आधार बनाकर गुजराती में कुछ कथाएँ तैयार कर उन पर जीवित रहना चाहिए। इस परियोजना के लिए उन्होंने कुछ धनी हिन्दू व्यापारियों से सम्पर्क किया, लेकिन उन्हें आशानुकूल राशि नहीं मिली। तब भी वह पूना गए और संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया। वहाँ उन्होंने 'लघु कौमदी' और कालिदास के नाटक 'विक्रमोर्वशीयम्' का अध्ययन किया। वहाँ उन्होंने काव्यशास्त्र का अध्ययन भी किया। इसे बहुत रुचिकर देखकर वह शिक्षक से कविता की कला की आवश्यकताओं पर चर्चा भी करने लगे। इस तरह उन्हें पिंगल, रस और अलंकार की गहराई से जानकारी हुई।

चार महीने के इस गहन अध्ययन के बाद २० मार्च, १८५९ को वह वापस बम्बई आ गए।

६

बहरहाल नर्मदाशंकर का कथाकार बनने का स्वप्न सिर्फ़ स्वप्न बनकर ही सीमित रह गया। यह काम हाथ में बड़ी राशि हुए बगैर शुरू नहीं हो सकता था और नौकरी छोड़ने के बाद जो सारा धन उन्होंने इकट्ठा भी किया था, वह पूना में खर्च हो चुका था। यहाँ-वहाँ देखने के बावजूद उन्हें कहीं कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। और वह अपने पिता को और अधिक चक्कर में नहीं डालना चाहते थे।

लगभग निराश-सी स्थिति के दौरान नर्मदाशंकर ने सौराष्ट्र में कार्य कर रहे हरिशंकर नामक व्यक्ति का नाम सुना। वह स्वामीनारायण सम्प्रदाय से सम्बद्ध भक्त थे। और नर्मदाशंकर ने सोचा कि वह युवक होंगे। वह शिक्षक भी थे और कवि ने सोचा कि यदि वह हरिशंकर को अपने साथ काम करने के लिए तैयार कर लें, तो उनकी साझेदारी में वह अच्छी तरह जीवनयापन कर सकेंगे और नैतिक तथा सामाजिक विषयों का अध्ययन कर उन पर व्याख्यान देने में भी समर्थ हो सकेंगे। तब क्यों नहीं जाकर उस व्यक्ति से मिला जाए? वह सौराष्ट्र में भावनगर से सिर्फ़ ८० मील की दूरी पर थे और एक जागरूक शासक द्वारा शासित भावनगर राज्य सांस्कृतिक रुचि वाले एक दीवान के सहयोग के चल रहा था। नर्मदाशंकर ने यह राज्य कभी नहीं देखा था, जबकि उन्होंने इसके बारे में काफ़ी कुछ सुन रखा था और काफी प्रगति कर चुके राज्यों में से एक को देखने का आकर्षण भी था। अपनी आदत के अनुसार पिता को सूचित किए बगैर वह भावनगर रवाना हो गए। उन दिनों में होने वाली यात्राओं की कठिनाइयों और असुविधाओं का सामना करने के बाद आखिरकार वह भावनगर पहुँच गए और वहाँ उन्होंने हरीशंकर के बारे में पूछताछ की। उन्हें बताया गया कि हरीशंकर

सम्बधी उनकी सूचना गलत है और कुछ गड़बड़ी के कारण इस समय वह व्यक्ति जेल में है। उन्हें यह भी बताया गया कि वह स्थान जहाँ हरिशंकर रहते थे, वह भी उनके अनुमान से अधिक दूरी पर है। इस तरह उस दिशा में और आगे जाने की कोई तुक नहीं थी और बम्बई जाने से पहले नर्मदाशंकर ने सोचा कि भावनगर में क्या कुछ किया जा सकता है।

वहाँ के शासक द्वारा उनकी अगवानी ठीक ढँग से की गई और दीवान द्वारा भी उन्हें पर्याप्त सम्मान मिला। जो कवि की ही जाति का था, लेकिन उनसे हुई भेंट कवि को कुछ अनुकम्पा सी लगी। वह इस तरह की बात बर्दाश्त करने वाले व्यक्ति नहीं थे; इसलिए वापस बम्बई पहुँचने के तत्काल बाद उन्होंने दीवान के पुत्र को लगभग उतने ही मूल्य की पुस्तकें भेंट स्वरूप भेज दीं, जितनी उन्हें दीवान से प्राप्त हुई थीं। उन्हें भावनगर में कुछ काम भी मिला, लेकिन उसकी कोई खास कीमत नहीं थी और आर्थिक दृष्टि से वह उसी स्थिति में आ गए, जिसमें वह बम्बई से भावनगर रवाना हुए थे।

भावनगर से लौटते हुए वह एक और राज्य बड़ौदा में भी कुछ दिन रहे, लेकिन मध्ययुगीन कवियों में से एक दयाराम जिनके जीवन का चित्रण उनकी एक पुस्तक में मिलता है, के सम्बन्ध में कुछ सूचनाएँ, प्राप्त करने के अलावा उन्हें कुछ नहीं मिला। इन राजसी राज्यों में २० दिन रहने के बाद वह वापस बम्बई आए।

बम्बई ने इस घुमक्कड़ व्यक्ति का स्वागत किया और उन्हें वहाँ की गतिविधियों में खींच लिया, क्योंकि उन दिनों बम्बई में बहुत-कुछ हो रहा था। सरकार शिक्षा के क्षेत्र में कुछ काम कर रही थी और कुछ अधिक जागरूक लोग सामाजिक सुधार के क्षेत्र में कुछ बातें उठा रहे थे। अपने गृह राज्यों से लौटने के तत्काल बाद नर्मदाशंकर को एक सरकारी अधिकारी श्री इ० जे० हावर्ड का यह पत्र मिला—

"मैं अनुरोध करता हूँ कि आप गुजराती के उच्चारण-शास्त्र को सभी कक्षाओं के लिए निश्चित करने के उद्देश्य से बनाई गई देशी भाषा पुस्तक समिति के सदस्य बनने की स्वीकृति प्रदान करने का कष्ट करें।"

कवि ने सदस्यता स्वीकार ली, लेकिन अन्य गतिविधियों में उनका पूरा ध्यान था।

बम्बई वापस आने के बाद वह हरिदासी कथाकार बनने की योजना का काम पूरा करने के लिए पुनः पूना जाने की सोच रहे थे, लेकिन उन्होंने सुना कि कवि दलपतराम अपनी आँखों का इलाज कराने के लिए बम्बई आ रहे हैं। उनके मित्रों ने व्यंग्य किया कि दलपतराम से मुकाबला होने के भय के कारण वह पूना भाग जाने की सोच रहे हैं। यह बात नर्मदाशंकर को पूना जाने से रोकने के लिए

पर्याप्त थी। वह उनसे बम्बई में मिले और बुजुर्ग कवि ने बहुत मित्रतापूर्ण ढँग से चर्चा की। उन्होंने नर्मदाशंकर से आग्रह किया कि वह उन्हें मराठी विद्वान भाऊदाजी के पास ले चलें। नर्मदाशंकर ने जो इस महान सावन्त के अच्छे मित्र थे, उनसे भेंट करवा दी। अगले दिन दोनों कवि समाज-सुधारक कृष्णदास मुलजी की सभा में गए। सभा समाप्ति के समय दलपतराम ने कुछ कविताएँ सुनाई, जिन्हें नर्मदाशंकर ने पसन्द किया। उन्हें इस वरिष्ठ कवि से कहीं कोई टकराव नहीं दिख रहा था।

बम्बई तब तक सिर्फ़ एक कवि नर्मदाशंकर को जानती थी। दलपतराम के बारे में थोड़ा बहुत पढ़ा गया था। अब बम्बई आने पर, वहाँ के लोग उत्सुकता से भर उठे। इन दोनों में कौन अच्छा हो सकता है, यह गुजरात का पुराना कवि अथवा बम्बई का नया कवि, जिसे वह अपना प्रिय कवि कह सके, क्यों नहीं इन दोनों की एक सभा की जाए? जहाँ वे इन दोनों की योग्यताओं का फैसला कर सकें। इस तरह कला और काव्य के प्रेमी एक सम्पन्न व्यक्ति के बँगले पर जमाव का आयोजन किया गया। शहर का समृद्ध और बुद्धिजीवी वर्ग यह मुकाबला देखने और सुनने को इकट्ठा हुआ। लेकिन संकोचहीन नर्मदाशंकर ने इस बार संकोच किया। यह मुकाबला १८ जून, १८५९ को हुआ। एक दिन पहले इसकी सूचना देने के लिए आने वाले मित्र ने नर्मदाशंकर से कहा कि वह अपनी कविताएँ पढ़ने के लिए तैयार होकर आए। नर्मदाशंकर ने उत्तर दिया—'मैं आऊँगा अवश्य, लेकिन कविताएँ सुनने के लिए, सुनाने के लिए नहीं।' मित्र इस बात पर ज़ोर देकर कह रहा था महाराष्ट्र के विद्वान और बम्बई सरकार के पुराने अनुवादक और नर्मदाशंकर के एक घनिष्ट मित्र विनायकराव वासुदेव ने भी लिखकर भेजा है कि अपनी श्रेष्ठ कविताएँ लेकर आए। लेकिन नर्मदाशंकर नहीं माने। उस दिन घर पहुँचने पर उन्होंने यह निश्चय किया कि वह मुकाबले में शामिल नहीं होंगे, क्योंकि यदि संयोग से उनकी अपनी कविताएँ श्रेष्ठ साबित हुई, तो पुराने और वरिष्ठ कवि को शर्मिन्दा होना पड़ेगा। इसलिए वह अपनी कोई कविता लिये बगैर ही उस बँगले पर पहुँचे।

दलपतराम, नर्मदाशंकर और एक अन्य मित्र करीब ५ बजे एक साथ सभा स्थल पर पहुँचे। सभागृह ठसाठस भरा हुआ था। वहाँ गुजराती और महाराष्ट्रियन इकट्ठे थे और चारों तरफ अंदाज लगाए जा रहे थे। दलपतराम से कविताएँ सुनाने का आग्रह किया गया। उन्होंने बहुत उत्साहपूर्वक सुनाई। उन्हें काफी पसंद किया गया और सराहना भी हुई। अब नर्मदाशंकर की बारी थी। उन्हें विधिवत आमंत्रित किया गया, लेकिन उन्होंने विनम्रतापूर्वक कहा—नहीं, वे दलपतराम के सम्मान के लिए इकट्ठा हुए हैं और उनको सिर्फ़ उन्हें ही सुनना चाहिए। इसके अलावा वह स्वयं उनमें से एक हैं और वे उन्हें कई बार सुन चुके हैं। लेकिन उन्हें

इस तरह नहीं बचने दिया जा सकता था। उन पर फिर जोर डाला गया। जोर डालने वालों में विनायकराव वासुदेव प्रमुख थे। नर्मदाशंकर और अधिक नहीं अड़ सकते थे। सभाओं और भाषणों के दौरान उन्हें कभी खदेड़ा नहीं गया था। इसके विपरीत उनसे उन्हें सदैव प्रेरणा मिलती रही थी। आखिरकार वह बोलने के लिए खड़े हुए। पहले वह हिचकिचा रहे थे, क्योंकि इसके लिए वह तैयार होकर नहीं आए थे और न ही अपनी कोई पुस्तक साथ लाए थे। लेकिन विनायकराव वासुदेव उनके पास खड़े होकर ही उत्साह बढ़ा रहे थे। धीरे-धीरे उनका मूड़ बनने लगा और वह तमन्यतापूर्वक सुनाने लगे। जैसे-जैसे वह सुनाते, विनायकराव बार-बार यह कहकर उनकी प्रशंसा कर उत्साह बढ़ाते—'वाह-वाह, नर्मदाशंकर, यह सुन्दर टुकड़ा तुमने कब लिखा', काव्य पाठ बहुत सुन्दर था और भारी प्रशंसा ने कवि की भावनाओं को जैसे आसमान पर चढ़ा दिया। उन्हें सिर्फ़ एक खराबी यह लग रही थी कि उनकी प्रशंसा जितनी अधिक-से-अधिक हो रही थी, दलपतराम उतने ही अधिक शिथिल होते जा रहे थे। नर्मदाशंकर ने दूसरे पैर से मित्र को संकेत भी किया, लेकिन वह नहीं समझे।

जैसे ही वह शाम समाप्त हुई, नर्मदाशंकर की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था। वह यह विश्वास लेकर घर लोटे कि दोनों में वह श्रेष्ठ कवि थे और दलपतराम को उनसे ईर्ष्या हो रही थी। श्रेष्ठता की यह ईर्ष्या भावना उनके जीवन में बराबर बनी रही और इस शांत तथा अच्छे स्वभाव वाले व्यक्ति से उनके सम्बन्ध भी बिगड़ गए जो शायद स्वयं भी अच्छा कवि था।

इस घटना से जुड़ी हुई एक और बात से उन दिनों में बम्बई शहर के बौद्धिक और सांस्कृतिक जीवन के समन्वित स्वरूप की झलक मिलती है। हमने देखा कि गुजराती के दो प्रसिद्ध कवियों के सम्मान में आयोजित कार्यक्रम में एक प्रसिद्ध महाराष्ट्रियन पंडित विनायकराव वासुदेव श्रोताओं में जुड़े हुए थे। महाराष्ट्र के महान विद्वानों में से एक डा० भाऊदा जी भी नर्मदाशंकर के घनिष्टतम मित्रों में से एक थे। कई अन्य महाराष्ट्रियन व्यक्ति भी गुजराती जीवन के सांस्कृतिक पहलू से जुड़े हुए थे। पारसी लोग उन दिनों की गुजराती कविता और कवियों के भक्त थे। यहाँ तक कि कुछ यूरोपियन भी इस भाषा और साहित्य में कम रुचि नहीं लेते थे। उन दिनों में बम्बई सचमुच सर्वदेशीय बना हुआ था और वे सुनहरे दिन थे। शहर का ऐसा सौहार्द्रपूर्ण वातावरण नर्मदाशंकर जैसे उत्साहशील व्यक्ति को ऊँचाई तक पहुँचाने के लिए बहुत सहायक था। कामना करनी चाहिए कि एक बार फिर बम्बई में उस तरह का वातावरण वापस आ सके।

उस समय के स्नेहिल और मित्रतापूर्ण वातावरण का अनुमान लगाने के लिए एक उदाहरण पर्याप्त होगा। दलपतराम से हुए मुकाबले के कुछ समय बाद ही, डा० भाऊदा जी नर्मदाशंकर से मिले और कहा कि वह दोनों कवियों के लिए

एक फण्ड एकत्र करने का प्रयास कर रहे हैं। इसलिए वे कोई चिंता किए बगैर काव्य-लेखन जारी रखें। यों यह विचार क्रियान्वित नहीं हो सका, लेकिन इससे कवि का कथाकर बनने का विचार अवश्य छूट गया। उन्होंने केवल कवि बने रहने का निश्चय किया।

७

दलपतराम की बम्बई यात्रा से जुड़ी हुई एक घटना से नर्मदाशंकर की गतिविधियों और व्यक्तित्व के एक अन्य पहलू की झलक मिलती है। यह बम्बई में सामाजिक मोर्चे पर चल रही गतिविधियों पर भी प्रकाश डालती है। जैसा कि हमने देखा बम्बई के कविता प्रेमी सम्पन्न लोगों ने दो कवियों के मुकाबले की बैठक का आयोजन किया था। ये लोग आपस में गुप्त रूप से इन दोनों की प्रतियोगिता की संभावनाओं का मजा लिया करते थे। इनमें से कुछ लोग चुपचाप यह आशा भी करते थे कि रौबीले नर्मदाशंकर इस पुराने कवि के सामने मात खा जाएँगे।

मुकाबले की पूर्व सन्ध्या पर एक मित्र उनसे मिलने उस पुस्तक विक्रेता के यहाँ पहुँचा जहाँ वह आम तौर पर मिलते थे। जब वे मिले, मित्र ने हँसते हुए कहा—'कल तुम्हारी शक्ति की परीक्षा होगी।' नर्मदाशंकर उसकी बात नहीं समझ पाए, क्योंकि उन्हें तब तक प्रस्तावित सभा की जानकारी नहीं थी। उन्होंने सोचा कि उस सभा के वैष्णव महाराजा के विरुद्ध उन्होंने जो कविताएँ लिखी और भाषण दिए हैं, मित्र का संकेत उस पर हो सकने वाली सम्भावित कार्यवाही के सम्बन्ध में है। इसलिए उन्होंने तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा—'मार्टिन लूथर ने कहा था कि वह अपने विचार नहीं छोड़ेंगे, चाहे उनके शत्रुओं की संख्या शहर की इमारतों की छतों में लगी हुई खपरैलों के बराबर ही क्यों न हो, लेकिन मैं कहता हूँ कि मैं महाराजा की चिन्ता नहीं करूँगा, चाहे मेरे दुश्मनों की संख्या इन खपरैलों के छोटे-छोटे टुकड़ों के बराबर हो जाए।'

यह विस्फोट दर्शाता है कि नर्मदाशंकर की गतिविधियाँ केवल साहित्यिक क्षेत्र तक सीमित नहीं थीं। १८ वर्ष की उम्र में पैदा हुई सामाजिक सुधार आंदोलन की ऊर्जा, इन बीच के वर्षों में काफी हद तक बढ़ गई थी और उस आंदोलन में नर्मदाशंकर भी सक्रिय रूप से हिस्सा ले रहे थे। उन्होंने सुधार की असाधारण बुद्धि और साहस रखने वाले कृष्णदास मुलजी के साथ मित्रता की थी। उनके असाधारण साहस और उत्साह के सम्बन्ध में एक उदाहरण पर्याप्त होगा।

कृष्णदास अपने प्रारंभिक जीवन में ही अपने माता-पिता को खो चुका था और उनकी माँ की मौसी उन्हें अपने घर ले आई थी। स्वाभाविक रूप से यह मौसी बहुत रूढ़िवादी थी। कृष्णदास सुधारवादी विचार रखते थे, लेकिन वह उन्हें अपनी मौसी से छिपाए हुए थे। एक बार, विधवा-विवाह की समस्या पर डेढ़ सौ रुपए के पुरस्कार की निबन्ध प्रतियोगिता की घोषणा हुई। कृष्णदास इस प्रतियोगिता में हिस्सा लेना चाहते थे, क्योंकि वह स्वयं विधवा-विवाह की आवश्यकता में विश्वास रखते थे और उनके पास विषय के पक्ष में पर्याप्त विचार थे। मौसी को इस बात का पता नहीं चाहिए, वरना वह दुःखी होगी। लेकिन, सारे प्रयासों के बावजूद, मौसी को इसका पता चल गया और वह क्रोधित होकर खिन्न भी हुई। यह पागलपन। और यह भी उनकी नाक के नीचे और उनके अपने घर में। यह बहुत दूर जाने वाले की बात थी। यह एहसानफरामोशी की पराकाष्ठा थी और इसे एक क्षण के लिए भी बढ़ावा नहीं दिया जा सकता था। कृष्ण को भी इसकी कीमत चुकानी पड़ेगी।

उसने चुकाई भी। यह बहुत महँगी थी, लेकिन वह कुछ नहीं कर सकता था। उसने स्वयं मौसी का घर छोड़ दिया और अपने पैरों पर खड़े होने की कोशिश की। उसे बहुत कठिन मेहनत करनी पड़ी, लेकिन वह अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहा। जैसे-जैसे उसका विकास हुआ, उन सिद्धान्तों ने उसे अनेक गतिविधियों से जोड़ दिया। इनमें से एक अनेक क्षेत्रों में भ्रमण के लाभ पर व्याख्यान देना भी था। यह भाषण नर्मदाशंकर के बुद्धिवर्द्धक मंडल द्वारा आयोजित किया गया था। भाषण इतना अच्छा था कि नर्मदाशंकर बहुत अधिक प्रभावित हुए। इसने दोनों की चिरस्थायी मित्रता की नींव डाली।

कृष्णदास मुलजी ने सामाजिक सुधार आन्दोलन का एक विशिष्ट क्षेत्र चुना। वैष्णव होने के नाते वह स्वयं अपने धर्म के पण्डे-पुजारियों द्वारा जीवन के प्रभाव और मौज के लिए अपनाए जाने वाले हथकण्डों को पहचानते थे। कृष्णदास ने एक पत्र शुरू किया और वैष्णव मत के इन तथाकथित रक्षकों पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने इस पत्र का नाम रखा—'सत्यप्रकाश'। नर्मदाशंकर ने इन महाराजाओं और उनकी करतूतों के विरुद्ध लेख लिखकर, कविता तैयार कर तथा व्याख्यान देकर अपने इस मित्र की सहायता की। इसलिए जब उनके मित्र ने मजाक में अगले दिन शक्ति की परीक्षा होने की बात कही थी, तो उन्होंने उसी सन्दर्भ में अपने शत्रुओं से टक्कर लेने का दावा किया था।

बहरहाल, वैसा कुछ नहीं हुआ, लेकिन नर्मदाशंकर समाज सुधार आन्दोलन में अग्रणी हो गए। उन्होंने स्वयं अप्रैल १८५९ में अपने शहर सूरत में एक छोटे से सुधार की शुरुआत की। कवि का कहना है कि उस वर्ष वह धर्म सम्बन्धी सभी अंधविश्वासों से मुक्त हुए। इसके तत्काल बाद उनकी अपनी जाति के एक सामू-

हिक भोजन के समय सूरत में एक घटना हुई। अब यह जाति दो हिस्सों में बँट गई—नागर गृहस्थ और नागर ब्राह्मण। नर्मदाशंकर दूसरी श्रेणी में आते थे। पहली श्रेणी वाले लोग यों तो सब उसी समाज के थे, लेकिन उनका स्तर दूसरों से ऊँचा था। इसलिए उन्होंने अजीबोगरीब परम्परा डाल दी थी। जब दोनों समुदाय एक साथ भोजन करते थे, तो गृहस्थ वर्ग की महिलाओं को उनकी चोलियाँ पहनने दी जाती थीं लेकिन ब्राह्मण वर्ग की महिलाओं को इसकी अनुमति नहीं थी। इस पर किसी ने आपत्ति नहीं की, क्योंकि यह एक मानी हुई परम्परा थी। नर्शदाशंकर ने इसको दूसरे ढंग से लिया और एक बार ऐसे ही भोजन के अवसर पर अपने परिवार की तथा कुछ अन्य महिलाओं को अपनी पूरी वेशभूषा पहनकर खाने के लिए जाने को कहा। इस कदम से अनेक लोग दुःखी हुए, लेकिन वह गन्दा रिवाज सदा के लिए समाप्त हो गया।

नर्मदाशंकर ने एक और कड़ा कदम उस समय उठाया, जबकि उस समय के गुजरातियों के प्रमुख महीपात्रम विदेश जा रहे थे। उन दिनों में समुद्र पार जाना सनकीपन समझा जाता था। और इस तरह के कदम को बढ़ावा देना भी उतना ही गलत समझा जाता था। नर्मदाशंकर पर महीपात्रम को ऐसा कदम उठाने के लिए बढ़ावा देने का आरोप लगाया गया, जबकि वह इस सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते थे। जाति के लोगों ने उनके विरुद्ध व्यक्तिगत रूप से तो कुछ नहीं किया, लेकिन इस अनुचित कार्य पर अप्रसन्नता व्यक्त करने वाला एक पत्र जाति के ही लोगों को बम्बई भेजा गया। नर्मदाशंकर, उनके पिता, उनके मित्र झवेरीलाल उर्मियशंकर और कुछ अन्य ने इस पत्र पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। उन्हें कुछ समय के लिए जाति से निकाल दिया गया, लेकिन उन्होंने परवाह नहीं की, जबकि उन दिनों में इस तरह जाति से निकाले जाने को बहुत खराब माना जाता था। यों कुछ महीनों बाद उन्हें वापस जाति में ले लिया गया, लेकिन वह सब कुछ त्यागने को तैयार थे, जहाँ इस तरह की घटनाओं की तरह सिद्धान्तों का प्रश्न आता था।

बहरहाल, नर्मदाशंकर के सामने सबसे बड़ी चुनौती सुप्रसिद्ध वैष्णव गुरु जदुनाथजी महाराज से टकराव की आई। वह बहुत चतुर और कुशल व्यक्ति थे और मधुरभाषी भी थे। वह सूरत में महान समाज सुधारक दुर्गाराम मेहताजी के सम्पर्क में आए। वह सुधारकों के तरीके जानते थे और यह भी समझते थे कि उन लोगों को किस तरह के मीठे शब्दों और छोटे कामों से जीता जा सकता है। जब यह गुरु बम्बई आए, नर्मदाशंकर और उनके साथी समाज सुधार के मोर्चे पर सक्रिय थे। उस पुरानी संस्था, जिसमें नर्मदाशंकर ने पहला व्याख्यान दिया था, ने अपनी कार्यकारिणी बदल दी और अब उसे वे लोग संचालित कर रहे थे, जो भाषणों तक सीमित नहीं थे। लड़कियों के लिए स्कूल खोले गए और रूढ़ि-

वादियों के लिए यह एक बड़ा झटका था। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया था, उन्हें यह विश्वास था कि यदि लड़कियाँ स्कूल गईं तो वे बहुत जल्दी विधवा हो जाएँगी। और विधवाओं की परिस्थितियाँ तो असहनीय थी हीं। सुधारकों ने विधवाओं के पुनः विवाह को पसन्द किया। रूढ़िग्रस्त लोग यह सोच भी नहीं सकते थे। नर्मदाशंकर विधवा-विवाह के सम्बन्ध में कविता लेखन और भाषण देने का काम कर रहे थे।

उन कविताओं और भाषणों में उन्होंने युद्ध वाली भाषा शैली का प्रयोग किया। एक तरह से दो सशस्त्र खेमे बन गए थे। किसी भी दिन उनमें संघर्ष छिड़ सकता था। सुधारक इसके लिए पूरी तरह तैयार थे। लेकिन जदुनाथ जी नहीं। उन्होंने इसमें दरार डालने की कोशिश की। उन्होंने हल्के सुधार की भाषा बोली। उन्होंने पूछा—लड़कियों की शिक्षा, क्यों, इसमें कुछ खास गलत नहीं था। वह इस सम्बन्ध में नर्मदाशंकर से मिलकर चर्चा करना चाहेंगे।

नर्मदाशंकर को सन्देश भेजा गया कि वह महाराज से मिलकर चर्चा करें। नर्मदाशंकर बाइकुल्ला पहुँचें, जहाँ महाराज ठहरे हुए थे, लेकिन वह गलत समय पहुँचे थे। जब कवि वहाँ पहुँचे, महाराज बाहर जाने को तैयार थे। एक दूसरे अवसर पर जब कवि वहाँ गए, तो महाराज दोपहर का विश्राम कर रहे थे। और उनसे नहीं मिले। इससे उनके सम्बन्ध थोड़े बिगड़े, लेकिन बात बहुत बड़ी नहीं क्योंकि वही महाराज किसी अन्य अवसर पर लड़कियों के एक स्कूल के वार्षिकोत्सव पर गए और वहीं पुरस्कार वितरित किए। इस कदम ने रूढ़िवादियों को भ्रमित और चुप करा दिया। दूसरी ओर सुधारवादी आनन्द विभोर हो गए। उनमें से कुछ लोग महाराज के इस रवैये से प्रभावित हो गए। लेकिन नर्मदाशंकर को शंकाएँ थीं। उन्हें विश्वास था कि वह संधि-विराम की भाषा बोल रहे हैं, लेकिन वास्तव में वह छिपे हुए दुश्मन हैं। वह यह भी निश्चित रूप से जानते थे कि उनके इस दुश्मन के पास अनेक हथियार हैं। और वह अधिक रणनीति जानता है। क्या लड़कियों की शिक्षा सम्बन्धी यह मुखौटा भी उसकी रणनीति का हिस्सा नहीं है। यदि जदुनाथजी सुधारों के लिए गम्भीर हैं और दिखावा नहीं कर रहे तो क्या वह विधवा-विवाह की अनुमति की बात कहेंगे? अथवा यदि वह इसके विरोधी हैं तो क्या वह इस विषय पर नर्मदाशंकर के साथ सार्वजनिक शास्त्रार्थ के लिए तैयार होंगे, नर्मदाशंकर इस चुनौती को स्वीकार करने के लिए तैयार थे और महाराजा के साथ सार्वजनिक वाद-विवाद के लिए सामने आ गए।

नर्मदाशंकर और उनके कुछ मित्रों को शंका थी की जदुनाथजी दोहरी भाषा बोल रहे हैं और सार्वजनिक रूप से वह जो कुछ कहते हैं, वह अपने रूढ़िवादी अनुयायियों के समक्ष कही जाने वाली बातों से भिन्न हैं। इसलिए कवि अपने लेखन, कविताओं और भाषणों के जरिए इस रूढ़िवाद के विरोध का अभियान

चलाए हुए थे लेकिन जब उन्होंने इसके लिए महाराज को सार्वजनिक रूप से शास्त्रार्थ की चुनौती दी, तो इसे उनके कुछ मित्रों और साथियों ने पसन्द नहीं किया। कुछ लोगों ने इस विचार के विरुद्ध सलाह भी दी।

लेकिन महाराज और उनके अनुयायियों ने इस कदम का स्वागत किया। इससे उन्हें प्रसन्नता हुई उन्हें ऐसा महसूस हुआ जैसे कि मकड़ी ने अपना जाल बहुत होशियारी से बुन दिया है और मक्खी स्वयं इसमें फँस रही है। महाराज ने प्रसन्नतापूर्वक शास्त्रार्थ की चुनौती स्वीकार ली और उन्हें अपनी पसन्द के स्थान पर आमंत्रित किया। नर्मदाशंकर ने यह आमंत्रण स्वीकार कर लिया, जबकि उनके अनेक साथी इस विवाद से हट गए थे क्योंकि महाराज की सद्भावनाओं और सुधारवादी विचारों से उनका विश्वास पूरी तरह नहीं उठा था। कवि ने इसकी परवाह नहीं की। यदि आवश्यकता हुई, तो वह अकेले जाएँगे और स्थिति का सामना करेंगे।

यद्यपि उनके साथी पीछे हट गए, किशनदास बाबा नामक एक पहलवान मित्र सभा में गड़बड़ी होने की स्थिति में कवि पर हमला होने की सम्भावना को ध्यान में रखकर उनके साथ हो गए, उस समय दो या तीन अन्य मित्र भी उपस्थित थे।

यह सभा कवि के जीवन में एक स्मरणीय अध्याय है, जिसने उनके शारीरिक साहस और नैतिक शक्ति के प्रदर्शन का अवसर दिया। उनके जीवन में इससे अधिक उत्तेजनापूर्ण और कोई घटना नहीं थी।

यह शास्त्रार्थ एक भीड़ भरे सभागृह में हुआ, जो रूढ़िवादियों का गढ़ कही जा सकने वाली बस्ती में था। सभागृह के चारों ओर कम्पाउंड भी बना हुआ था। और वह सब खचाखच भरा हुआ था। केवल सभागृह में महाराज के करीब दो सौ अनुयायी थे और बाहर अहाते में करीब आठ सौ से अधिक। महाराज बहुत चतुर थे। वह अपने विरोधी का उत्तेजक स्वभाव जानते थे और धीरे-धीरे वह उन्हें असहनीय स्थिति की ओर मोड़ ले गए। अकस्मात महाराज ने उनसे पूछा कि क्या उन्हें शास्त्रों के दैवीय होने और उनके ईश्वर द्वारा बनाए जाने में विश्वास है? इस गर्म और उत्तेजक वातावरण में कवि द्वारा यह उत्तर दिया जाना स्वाभाविक था कि उन्हें ईश्वर द्वारा नहीं बनाया गया। महाराज की ओर कुछ कहने की आवश्यकता नहीं थी। जिस क्षण उन्होंने यह कहा, जैसे गाज गिर गई हो। भीड़ बेकाबू होकर उत्तेजित हो गई। नर्मदाशंकर ने महाराज से भीड़ को नियंत्रित करने के लिए कहा और चेतावनी दी कि यदि उन पर हमला हुआ तो इसकी पूरी जिम्मेदारी महाराज पर होगी।

इस समय सभागृह में नाम मात्र के लिए भी नर्मदाशंकर का कोई साथी नहीं था। यहाँ तक कि किसी हमले के समय रक्षा की दृष्टि से साथ में आए शक्ति-

शाली व्यक्ति किशनदास बाबा को भी वह बाहर भेज चुके थे, क्योंकि जब उनके पिता को यह मालूम हुआ था कि सभा में गड़बड़ी हो सकती है, तो वह उन्हें बचाने के लिए वहाँ आ गए थे। कवि ने सोचा कि ऐसी स्थिति में सबसे पहला प्रहार उनके पिता पर होगा, इसलिए उन्होंने पिता को बाबा के साथ भिजवा दिया। वह दृश्य जितना रोमांचकारी रहा होगा, उतना भयावह भी। एक तरफ कट्टर हठधर्मी लोगों की हज़ारों की उत्तेजक भीड़ दूसरी तरफ सहायता के नाम पर एक भी साथी के बगैर अकेला यह साहसी कवि। उस दृश्य की कल्पना करना ही कितना रोमांचक है, जब उस उग्र भीड़ में वह कवि सिर ऊँचा किए और सीना ताने हुए दृढ़ता से लोगों को चेतावनी दे रहा था। लेकिन उस चेतावनी को बहरे कान कैसे सुन सकते थे ? खतरे की भनक पाते ही, किसी को ध्यान जाए, इससे पहले ही कवि सभा से बाहर निकल आए। बाहर खड़ी उत्तेजित भीड़ तो यह भी नहीं जानती थी कि उनका कोपभाजन व्यक्ति वही था, इसलिए उन्होंने उनसे व्यग्रतापूर्वक पूछा—'कहाँ है वह हरामी ?' नर्मदाशंकर ने बाहर सड़क की तरफ हाथ का इशारा करते हुए कहा—'ध्यान से देखो, वह उधर जा रहा है', और जब तक कोई उन्हें पहचाने, वह भाग निकले। जब निकल भागने की खबर फैली, तो थोड़ी देर बाद लोग उनके घर के पास इकट्ठा हो गए, लेकिन जब तक वे उन्हें पकड़ें वह स्वयं एक कमरे में चुपचाप बन्द हो गए। वह सिर्फ़ उनकी आवाजें सुनते रहे।

यों इस मुकाबले में वह बहुत बहादुरी से निकल आए, लेकिन इससे उनका मन खट्टा हो गया। उन्हें महसूस हुआ कि उनके साथियों ने उन्हें नीचा दिखाया। उन्हें लगा कि वह निश्चय की कमी नहीं, वरन कायरता ही थी, जिस कारण वे इस प्रतिष्ठा की घटना के समय उनके साथ नहीं गए। उन्हें यह भी महसूस हुआ इस घटना के बाद भी शास्त्रों के ईश्वर द्वारा नहीं बनाए जाने के उनके विचारों को लेखन से नकारते हुए वे लोग बहुत सफ़ाई से खेल रहे हैं। और बहुत जल्दी और कड़ाई से वह इस नतीज़े पर पहुँच गए कि ये लोग बातें बनाने और प्रचार पाने भर के लिए बराबर हैं, लेकिन कार्यवाही के समय वे क्या कर सकते हैं, यह उन्होंने देख लिया है।

यद्यपि इसके बाद उन्होंने कुछ सुधारवादी मित्रों के साथ मिलकर कुछ सामाजिक कार्य किया, लेकिन पुरानी नेतागिरी वाली भावना समाप्त हो गई।

उसी दौरान वह प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण महाराज निन्दा लेख प्रकरण भी सामने आया और गुजरात में सर्वत्र इसकी चर्चा हुई। इस प्रकरण में भी जदुनाथजी महाराज गहराई से जुड़े हुए थे। लेकिन इस बार महाराज का निशाना नर्मदाशंकर नहीं वरन उनके मित्र प्रसिद्ध समाज सुधारक कृष्णदास मुलजी थे।

जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, कृष्णदास मुलजी समाज सुधार

संबंधी एक पत्र 'सत्यप्रकाश' का सम्पादन कर रहे थे। यह पत्र जितना स्पष्टवादी था, उतना ही निडर भी। वैष्णव महाराज की गतिविधियों और व्यवहार की आलोचना, इसके प्रमुख लक्ष्यों में से एक था। महाराज इस अभियान से निपटने के लिए उचित अवसर का इन्तज़ार कर रहे थे। इस पत्र का प्रभाव रोकने के लिए उन्होंने अपना एक पत्र प्रारंभ किया, लेकिन इसका कोई ठोस लाभ नहीं हो सका। इसलिए वे किसी तरह समय निकाल रहे थे।

जब 'सत्यप्रकाश' ने 'प्राचीन हिन्दू धर्म' शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया, तब उन्होंने सोचा कि उनका अवसर आ गया है। तब भी उन्होंने कुछ इन्तज़ार और विचार-विमर्श किया, लेकिन काफी कुछ विचारने के बाद उन्हें लगा कि दुश्मन पर करारा हमला करने के इस उचित मौके को नहीं छोड़ा जाना चाहिए। इसलिए १४ मई, १८६१ को स्वयं जदुनाथजी ने कृष्णदास मुलजी के विरुद्ध मानहानि का दावा कर दिया और २१ अक्तूबर, १८६० को प्रकाशित एक लेख को अनुचित ठहराते हुए पत्र से ५० हज़ार रुपए की हानि की क्षतिपूर्ति की माँग की।

२३ दिनों तक हुई कार्यवाही के दौरान यह प्रकरण शहर में ही नहीं, सम्पूर्ण क्षेत्र में चर्चा का विषय रहा। एक ओर प्रदेश के रूढ़िवादी महाराज के साथ खड़े थे, जब कि दूसरी ओर शहर तथा प्रदेश के जागरूक और बुद्धिजीवी लोग। इनमें हिन्दू, पारसी और बम्बई में विल्सन कालेज के संस्थापक डॉ० विल्सन जैसे अँग्रेज तक शामिल थे। प्रकरण की समाप्ति सुधारकों की विजय और महाराज तथा उनके रूढ़िवादी अनुयायियों की भारी पराजय के साथ हुई। देश-भर में विजयोल्लास की लहर-सी दौड़ गई। नर्मदाशंकर ने भी इस सम्बन्ध में एक दो कविताएँ लिखकर विजय पर प्रसन्नता प्रकट की, लेकिन वह अन्दर से खुश नहीं थे। उन्हें लगा कि इस सफलता का श्रेय उन्हें और अन्य साथियों को भी मिलना चाहिए था, जिन्होंने सबसे पहले इस तरह के कदम और विद्रोह की शुरुआत की थी, जब कि सारा श्रेय कृष्णदास अकेले लूट रहे थे। इससे भी उनकी निराशा बढ़ी और उनके तथा सुधारवादियों के बीच बनी खाई चौड़ी हुई।

तब भी वह कुछ क्षेत्रों में एक साथ काम कर रहे थे। एक मित्र द्वारा पुनर्विवाह के लिए तैयार एक ब्राह्मण विधवा से नर्मदाशंकर का परिचय कराया गया। नर्मदाशंकर ने अपने सुधारवादी मित्रों की सहायता ली और अच्छे व्यवहार का वायदा करने वाले एक व्यक्ति से उसका विवाह करा दिया, कुछ समय बाद यही पति-पत्नी उन लोगों के विरुद्ध हो गए, जिन्होंने उनकी सहायता की थी। जिन सुधारकों ने इस विवाह में सहायता की थी, वे बहुत दुःखी हुए। इस तरह के मामलों में एक साथ हो जाने के बावजूद उन लोगों के बीच बन रही खाई नहीं पट सकी।

इसी तरह का मतभेद उस समय पैदा हुआ, जब इंग्लैंड से महीपात्रम के वापस आने पर उनके साथ खाना खाने का प्रश्न सामने आया। जो ऐसा करेंगे उन्हें निश्चित रूप से उनकी जाति द्वारा बहिष्कृत किया जाएगा। नर्मदाशंकर ने देखा कि जो लोग उनसे यह कड़ा कदम उठाने को कह रहे हैं, वे स्वयं इसमें शामिल होने को तैयार नहीं हैं।

लेकिन इसके बावजूद समाज-सुधार के क्षेत्र में चल रही गतिविधियाँ जारी रहीं। एक महाराष्ट्रियन मित्र ने उनसे एक संस्था का सदस्य बनने का आग्रह किया, जिसकी स्थापना हिन्दुओं की जाति व्यवस्था और ऊँच-नीच को तोड़ने के लिए की गई थी। कवि ने प्रसन्नतापूर्वक आग्रह स्वीकार कर लिया, लेकिन यह शर्त रखी कि वह तभी इस संस्था के सदस्य बनेंगे, जब संस्था के सदस्य सक्रिय रह कर इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कार्य करेंगे और प्रचार के साथ-साथ स्वयं भी उसे व्यवहार में लाएँगे। मित्र ने कहा कि यह बातें तो स्वाभाविक रूप से होंगी ही। इस वायदे पर नर्मदाशंकर संस्था के सदस्य बन गए, लेकिन सदस्यों में गम्भीर मतभेद पैदा होने पर संस्था जल्दी ही टूट गई। बहरहाल अन्य लोगों के हट जाने के बावजूद ६ सदस्यों ने यह काम जारी रखने का निश्चय किया। उन ६ में नर्मदाशंकर एक थे। लेकिन ६ में से ५ ने कुछ नहीं किया और संस्था छोड़ गए। नर्मदाशंकर के पास चुप रहने के अलावा कोई रास्ता नहीं था।

जीवन-निर्वाह के लिए काम की कठिनाई आनी ही थी। सामाजिक और साहित्यिक गतिविधियाँ चल रही थीं। किसी को भी इसके लिए दूसरे में कटौती करना ही होती। नर्मदाशंकर लड़कियों के स्कूल में कविता पाठ पढ़ाने के लिए जाने लगे और कुछ समय उन्होंने दो अँग्रेज़ों को गुजराती भी पढ़ाई। यह सब आशंकालिक काम था। उन्हें एक बार हरिदास कथा करने का अवसर भी मिला।

८

इस अवधि के दौरान अन्य क्षेत्रों की गतिविधियाँ व्यस्त रहने के बावजूद कवि की रचनात्मक गतिविधि निर्विघ्न रूप से चल रही थी। नर्मदाशंकर अनेक क्षेत्रों में काफी काम करने की क्षमता रखते थे। जब वह एक तरफ दलपतराम और दूसरी तरफ जदुनाथ महाराज से टकरा रहे थे, उसी समय उन्होंने 'नर्म कविता' शीर्षक से अपनी कविताओं के चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें और आठवें संस्करणों को प्रकाशित किया। उन्होंने पिंगल तथा काव्यकला और भाषण सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण हिन्दी पुस्तकों का अध्ययन किया। १८६० में उन्होंने 'तत्व शोधक

सभा' नामक संस्था का गठन किया और 'नर्म कविता' के नौवें तथा दसवें संस्करण प्रकाशित किए। उन्होंने कुछ व्याख्यान दिए और सामाजिक तथा साहित्यिक विषयों सम्बन्धी व्याख्यानों को प्रकाशित करने के साथ-साथ महाकवि दयाराम की कविताओं का संग्रह सम्पादित 'दयाराम काव्यसंग्रह' शीर्षक से प्रकाशित किया।

इसी दौरान नर्मदाशंकर ने एक और महत्वपूर्ण कार्य किया, जिससे उन्हें बहुत ख्याति मिली। वह कार्य था—अकेले गुजराती भाषा का शब्दकोश तैयार करने का। उस समय भाषा में ऐसी कोई पुस्तक नहीं थी, जो कुछ मार्गदर्शन कर पाती, लेकिन उनके उत्साही और साहसिक स्वभाव के कारण वह १८ नवम्बर, १८६० से इस काम को शुरू कर चुके थे।

अभी तक उनके बारे में जो कुछ जाना गया है, उसे देखते हुए लोगों को आश्चर्य होगा कि उन्होंने यह शब्दकोश कैसे तैयार किया? यह है इसका उत्तर।

उनकी कविताओं को स्कूलों में पढ़ाने के लिए पाठ्यक्रम में रखी गई थी और चूँकि यह एक नई लेखन पद्धति थी, इसलिए उनकी कविताओं में प्रयोग किए गए संस्कृत मूल के शब्दों को समझने में छात्रों को कठिनाई होती थी। उनके पास इसकी शिकायत पहुँची और उन्होंने कोई रास्ता निकालने की सोची। फिर क्या तरीका हो सकता है? उन्होंने अपनी कविताओं में प्रयोग किए गए सभी कठिन शब्दों के अर्थ निकालने का विचार किया, ताकि भविष्य में छात्रों को इस तरह की कठिनाई न हो। यह एक रुचिकर काम था और इसमें उन्हें आनन्द आया। लेकिन उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि ऐसी कठिन शब्दों की संख्या बहुत अधिक है। तब वह अपनी कविताओं में उपयोग किए गए शब्दों तक ही सीमित रहे? क्यों नहीं इस भाषा के सभी शब्दों का एक कोश बना दें, जो सदा के लिए छात्रों के लिए उपयोगी हो सके? यह विचार बहुत जल्दी क्रियान्वित होने लगा और उन्हें इस महत्वपूर्ण कार्य को पूरा करने में अनेक वर्ष लगे और इसे प्रकाशित रूप में देखने तक उनके सामने अनेक कठिनाइयाँ भी आई। लेकिन सारी कठिनाइयों के बावजूद यथाशीघ्र प्रकाशित करने का लक्ष्य सामने रखने से उनके उस प्रयास के पहले चार वर्षों में ही इस शब्दकोश—'नर्मदाशंकर' के पहले तीन संस्करण प्रकाशित हो गए।

इस नए काम के साथ ही उनका काव्य लेखन और आवेगी तथा रोमांटिक किस्म का जीवन क्रम चलता रहा। उनकी दूसरी पत्नी १८६० में ही घर में आई थी, लेकिन कवि को अनुभव हुआ कि अप्रैल १८६१ में ही वह सम्पन्न परिवारों की दो महिलाओं के स्नेहमय सम्पर्क में आए। इन महिलाओं से सम्बन्ध और समाज सुधार के स्वभाव तथा रोमांटिक वातावरण ने निश्चय रूप से उन्हें ऐसी कविताओं के सृजन के लिए प्रेरित किया होगा, जिनकी कथा और पृष्ठभूमि तत्कालीन गुजराती भाषा और साहित्य के लिए काफी नई थी। उन्होंने 'वैधव्य

चित्र' नामक एक कविता में विधवाओं के दुःख और उनकी कष्टदायक परिस्थितियों का चित्रण किया, जो विषय और शैली दोनों ही रूप में नया और अनूठा था। उन्होंने वर्ड्सवर्थ 'लकी गे' का स्वच्छन्दता से अनुवाद किया, जो अपने ढँग से एक नया रास्ता था। उन्होंने अनेक नए विषयों पर लिखने का प्रयास किया और अनेक नई शैलियाँ अपनाई। उदाहरण के लिए हम प्रकृति-काव्य का उल्लेख कर सकते हैं। लोगों ने विभिन्न विषयों पर अपनी कविताओं में प्रकृति का चित्रण किया था, लेकिन कालिदास के 'ऋतुसंहार' अथवा थामसन की कविता 'द सीजन्स' की तरह गुजराती भाषा में कुछ नहीं लिखा गया था। नर्मदाशंकर ने यह काम किया और प्रकृति-वर्णन और विभिन्न ऋतुओं की व्याख्या करने वाली एक लम्बी कविता 'ऋतु-वर्णन' लिखी। शुद्ध कविता की दृष्टि से इसे कुछ भी माना जाए, इसे एक नई दिशा में जाना अवश्य कहा जाएगा।

अपना स्वयं का शब्दकोश तैयार करने के अलावा १८६२ के प्रारम्भ में वह अपने पारसी मित्र नानाभाई रुस्तमजी और आवदेशर फारमजी को अँग्रेजी-गुजराती शब्दकोश तैयार करने में भी सहायता कर रहे थे, जिससे उन्हें अच्छी-खासी आमदनी हुई। इसी समय उन्होंने प्रिय से बिछोह के कथानक पर एक वैयक्तिक कविता लिखी, जो एक नया प्रयोग था, क्योंकि तब तक लोग राधा और कृष्ण अथवा अन्य प्रसिद्ध प्रेमियों को लक्ष्य बनाकर दूसरे नामों से छिपाकर अपनी भावनाएँ प्रगट करते थे। इसी दौरान वह काफी घूमे और यात्राओं तथा आत्मानुभव पर आधारित अनेक कविताएँ भी लिखीं।

नर्मदाशंकर को सदैव नए कथानक, नए विषय और नई शैली की तलाश रहती थी। वह वैयक्तिक कविता, प्रकृति-काव्य, सामाजिक सन्दर्भों वाली कविता, आह्वान-काव्य और युद्धप्रिय काव्य और परिभाषिक कविता लिख चुके थे, लेकिन एक महाकाव्य लिखने की दिशा में उन्होंने कुछ नहीं किया था। तब क्यों नहीं इसके लिए भी प्रयास किया जाए लेकिन उन्होंने महसूस किया कि महाकाव्य के लिए एक उचित मानदण्ड होना चाहिए। उनके अथवा अन्य गुजराती कवियों के पास महाकाव्य के कथानक का मानदण्ड नहीं था। उन्होंने अनेकों किताबें छान मारीं, लेकिन कोई सन्तोषजनक हल न निकल पाने के कारण उन्होंने अपना मानदण्ड बनाया। मानदण्ड लिखा नहीं जा सका, लेकिन कोशिश अवश्य हुई। नए मानदण्ड के अनुसार कुछ पंक्तियाँ सामने आईं। उनके द्वारा बनाया गया मानदण्ड न तो उनके काम के लिए पर्याप्त था और न ही उनके बाद आने वालों के लिए। महाकाव्य के कथानक के लिए एक एक उचित मानदण्ड का निर्धारण न उनके लिए संभव था और न ही उनके उत्तराधिकारियों के लिए सम्भव हुआ। लेकिन दूसरी खोज चल रही है और वह इस खोज के प्रणेता थे।

उनके रचनात्मक और सार्वजनिक जीवन के लिए यह सर्वाधिक प्रसन्नता का

समय था। 'हिन्दू समाज के झुकने और पतन' सम्बन्धी उनकी एक लम्बी कविता को बेहद प्रशंसा मिली। उनके व्याख्यान ध्यान से सुने गए, उनकी पुस्तकें काफी बिकीं और सभी वर्गों एवं समाज में उनके मित्र हो गए। उनमें से कई प्रमुख लोगों का जिक्र पहले किया जा चुका है, लेकिन और नामों का उल्लेख किया जा सकता है। महान संस्कृतविद डा० भंडारकर उनमें से एक थे। कई उदार पारसी उनकी मित्रता का दावा करते हुए गौरवान्वित महसूस करते थे। बम्बई के अनेक लखपति भाटिया और बनिए उन्हें अपना निजी मित्र मानकर उन्हें काफी धन अथवा अन्य ढेरों उपहार देते रहते थे। यहाँ तक कि बम्बई के कुछ अँग्रेज़ तक उनकी मित्र-मंडली में शामिल थे। गवर्नर द्वारा की जाने वाली पार्टियों और समारोहों में उन्हें आमंत्रित किया जाता था।

इन सब कारणों से नर्मदाशंकर प्रसन्न थे। उनके पास प्रसिद्धि थी और मित्र थे। फिर उनका प्रभाव था। समाज में उनकी इतनी प्रतिष्ठा हो गई थी कि जब कभी वह बाहर की यात्रा से वापस आते थे, तो बन्दरगाह पर उनकी अगवानी के लिए आने वालों की संख्या १० से १५ हज़ार तक हो जाती थी। और अच्छी-खासी नौकरी तथा ट्यूशन छोड़ने के बावजूद उन्हें कोई खास परेशानी नहीं थी, क्योंकि पुस्तकों की बिक्री तथा धनी मित्रों से मिलने वाले उपहारों आदि से होने वाली आमदनी से उनका पूरा खर्च चल जाता था। इसी तरह के एक उपहार की एक घटना से उन उपहारों की महत्ता का अनुमान लगाया जा सकता है।

उनके लखपति मित्रों में बम्बई के एक व्यापारी पुत्र श्री कृष्णदास माधवदास भी थे। एक बार नर्मदाशंकर ने उनकी सहायता से समाज सुधार के काम के लिए एक मिशनरी संस्था चलाने की सोची। मिशन का मुख्यालय बम्बई में होना चाहिए। लेकिन सामाजिक परिवर्तन का लक्ष्य गुजरात के गाँव-गाँव और अन्य शहरों तक पहुँचाया जाना चाहिए। हाँ, नर्मदाशंकर इसके प्रमुख प्रवक्ता और व्याख्याता रखना चाहिए। मिशन के दैनन्दिन कार्य के लिए एक संस्थान और कर्मचारी होना चाहिए। कृष्णदास माधवदास ने इसका इन्तज़ाम करने का वायदा कर दिया, लेकिन अन्य सहयोग के अभाव में मिशन का विचार क्रियान्वित नहीं हुआ।

यह मित्र कृष्णदास माधवदास, नवम्बर १८६२ में 'द फ्रेयर लेण्ड रिक्लेमेशन कम्पनी' बनाने वालों में से एक थे। लोगों पर इस कम्पनी का इतना गहरा प्रभाव बना था कि इसके शेयर खरीदने की होड़-सी लगी हुई थी। शेयर के दाम आकाश छूने लगे और कम्पनी का एक शेयर तक खरीदना मुश्किल हो गया। कम्पनी के संस्थापकों में से एक होने के कारण कृष्णदास ने अपने अनेक मित्रों को यह शेयर दिलवा दिए। नर्मदाशंकर उनके मित्रों में से एक थे, लेकिन वह इस व्यापार में कहीं नहीं थे। इसलिए उनके अनेक मित्रों और शुभचिन्तकों ने उनसे शेयर के

लिए कृष्णदास से सम्पर्क करने की सलाह दी। कवि को यह विचार पसन्द नहीं आया, इसलिए उन्होंने हरेक को अलग-अलग उत्तर दिए और कहा कि कृष्णदास उन्हें पहले ही एक शेयर दे चुके हैं। लेकिन वह शेयर माँगने नहीं गए।

उन्हीं दिनों कृष्णदास ने अपने जन्म दिन पर कुछ मित्रों को बुलाया। आमंत्रितों में नर्मदाशंकर एक थे। वह पार्टी में गए अवश्य, लेकिन इस निश्चय के साथ कि शेयर का जिक्र नहीं करेंगे। जैसे ही उन्होंने घर में प्रवेश किया, कृष्णदास उन्हें बुलाकर अलग ले गए और कान में फुसफुसाकर बताया कि उन्होंने उनके लिए एक शेयर अलग रखा हुआ है। इससे प्रसन्न होने के बावजूद कवि ने बहुत विनम्रतापूर्वक कहा—"इसकी क्या आवश्यकता थी?" कुछ दिनों बाद नर्मदाशंकर ने एक मित्र के ज़रिए यह शेयर बेचकर ५,७०० रुपए का मुनाफ़ा प्राप्त किया। इससे कवि को अपना सारा कर्ज़ चुकाने में सहायता मिल गई।

किसी को भी यह जानकर आश्चर्य होगा कि इतनी आमदनी के बावजूद उन पर इतना अधिक कर्ज़ था। हाँ, दुर्भाग्यवश वह ऋणी थे, क्योंकि वह बहुत खर्चीले ढँग से रहते थे। वह हज़ारों पाते थे, लेकिन कई हज़ार खर्च करते थे। वह आनन्दमय और तनावरहित जीवन जी रहे थे। उनके जीवन में न नशे पर रोक थी और न प्रेम करने पर। आसाधारण सस्ताई के उन दिनों में वह ७५ रुपए मासिक किराए वाले मकान में रहते थे। वह राजकुमार की तरह मनोरंजन करते थे। और आवेग के किसी भी क्षण लोगों को कुछ भी दे देते थे। उन सुनहरे दिनों में उनके दिमाग में कल की चिन्ता कभी नहीं आई।

लेकिन कोई सोचे या न सोचे, कल हमेशा होता है। कवि के धनी मित्र और संरक्षक कृष्णदास माधवदास, जिनके द्वारा दिए गए शेअर से कवि को एक ही झटके में ५,७०० रुपये की आय हुई थी, बहुत उदार थे। एक अन्य अवसर पर भी वह बहुत सहायक हुए। जब वह प्रतिष्ठा की कगार पर थे, कवि दलपतराम अहमदाबाद में बन रहे अपने मकान के लिए कुछ पैसा इकट्ठा करने के लिए बम्बई आए। उन्होंने कृष्णदास से सम्पर्क किया और एक गुणगान करने वाली कविता में उनकी प्रशंसा की तथा उनकी मकान निर्माण योजना के लिए सहायता माँगी। कृष्णदास को उनका यह तरीका बहुत खराब लगा और उन्होंने उन्हें कुछ नहीं दिया। इस घटना के कुछ समय बाद जब वह नर्मदाशंकर से मिले तो उन्होंने इस घटना की चर्चा की और कहा—"यदि मैं कुछ देना चाहूँगा, तो निश्चित रूप से मेरे नर्मद को दूँगा।" (नर्मद उनका प्यार से लिया जाने वाला संक्षिप्त नाम था, जिससे वह पूरे गुजरात में जाने जाते थे। यहाँ तक कि आज भी लोग नर्मदाशंकर के बजाय इसी संक्षिप्त नाम को पसन्द करते हैं।) नर्मद बस मुस्कराए और कुछ नहीं कहा। कुछ दिनों बाद कृष्णदास ने कवि को ५ हज़ार रुपए का एक चैक भेजा

और यह वायदा भी किया कि वह कवि की पुस्तकों के प्रकाशन का खर्च भी उठाएँगे।

बम्बई में स्टाक एक्सचेंज में हुई व्यापारिक असफलता से कृष्णदास जैसे उनके अनेक मित्रों की हालत खराब हो गई और अब उन लोगों से कोई वित्तीय सहायता मिल पाने की सम्भावना नहीं थी। १८ जनवरी, १८६४ को नर्मदाशंकर के पिता का भी निधन हो गया, जिन्हें वह बहुत चाहते थे और जो उनकी व्यस्त और संघर्षमय जिन्दगी में सदैव प्रेरणास्त्रोत तथा सहायक थे। पुस्तकें खरीदने वाले लोग, जो सामान्यतः उच्च मध्यमवर्ग में होते हैं, जल्दी पैसा बनाने के चक्कर में शेयर खरीदकर बर्बाद हो चुके थे और अब कोई पुस्तक खरीदने को तैयार नहीं थे। कवि के घरेलू जीवन में भी कठिनाई आई। बम्बई में उस तरह के खर्चीले ढँग से रहना सम्भव नहीं था, क्योंकि इस तरह की ज़िन्दगी के लिए निकट भविष्य में कोई स्रोत नहीं दिख रहे थे।

इस सब ने नर्मदाशंकर को बम्बई छोड़ने और आर्थिक रूप से सस्ते तथा शांत शहर सूरत जाकर रहने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने इसके पूर्व सितम्बर में लोगों की वर्षों से बनी हुई उदासीनता दूर करने और कुछ ठोस काम करने के लिए वातावरण बनाने के उद्देश्य से एक पाक्षिक पत्र 'दांडियो' का प्रकाशन भी प्रारम्भ कर दिया था। इसके लिए भी उनके अपने गृहनगर में रहने की आवश्यकता थी।

जैसी उनकी आदत थी, इस नए विचार का कवि के दिमाग पर प्रभाव हुआ और १८६५ में उन्होंने अपना मुख्यालय बदलकर सूरत कर लिया।

यह खर्च कम करने और मितव्ययी जीवनयापन के लिए किया गया था। लेकिन पुरानी आदतें कटिनाई से समाप्त होती हैं। सूरत जाने के बावजूद उन्होंने बम्बई में एक किराए का मकान रखा हुआ था, क्योंकि उन्हें यदाकदा बम्बई आना ही था। उन्होंने सूरत में ज़मीन का एक टुकड़ा खरीदा और बहुत महँगा यानी १२ हज़ार रुपए की लागत से वहाँ एक मकान बनवा लिया। उन्होंने इसका नाम रखा—'सरस्वती मंदिर' और वहीं उन्होंने अपना सूत्र वाक्य 'प्रेम शौर्य' भी खुदवाया।

भाग्य के इन सारे चक्करों के बावजूद उनके लेखन का कार्य बराबर चल रहा था। उनकी सारी कविताओं का एक संकलन 'नर्म कविता' नाम से प्रकाशित हुआ, उनके गद्य लेखन की एक पुस्तक छपी और 'नर्म व्याकरण' शीर्षक से व्याकरण के पहले और दूसरे संस्करण भी प्रकाशित हुए और १८ सितम्बर, १८६६ को उनकी साहसिक, गम्भीर और सुन्दर आत्मकथा 'मेरी हकीकत' भी उन्होंने पूरी कर दी।

इस आत्मकथा के लेखन के विचार की कहानी भी दिलचस्प है।

१८६६ में नर्मदाशंकर सिर्फ़ ३३ वर्ष के थे। उस समय वह प्रसिद्धि और दैदीप्य के कगार पर थे और १८५५ में पहली कविता लिखने के बाद के इन ११ वर्षों में उन्होंने बहुत लिखा था और अब भी बराबर लिख रहे थे। लेकिन जैसा उन्होंने अपनी आत्मकथा में भी उल्लेख किया है, १८६६ में उनका काव्य लेखन कम हो गया था, जो कोई भी क्रियाशील कवि नहीं चाहेगा। इसमें व्यक्ति क्या कर सकता है ? कविता आदेश से नहीं लिखी जाती, न ही यह किसी व्यक्ति का पत्र होती है। लेकिन लिखना तो चाहिए ही। तब क्यों नहीं कुछ और लिखा जाए।

वह कुछ क्या हो सकता है ? उन्होंने अपने आप से पूछा और उसी समय उन्हें आत्मकथा लिखने का विचार आया। उन्होंने स्वयं इस नए काम की प्रेरणा के कारणों के बारे में बताया है।

पहला तो यह कि तब तक गुजराती भाषा में आत्मकथा लिखने की परम्परा नहीं थी और उन्हें इसे शुरू करना था। दूसरा यह कि डा० भाऊ दाजी, कृष्णदास मुलजी, रुस्तमजी गुस्तादजी ईरानी और अन्य मित्र उन पर निरन्तर अपनी आत्मकथा लिखने के लिए ज़ोर डाल रहे थे, ताकि वे उनके जीवन की कहानी जान सकें। तीसरा यह कि वह स्वयं अपने को जान सकें यानी आत्म-विश्लेषण कर सकें। चौथा प्रमुख कारण यह था कि व्यक्ति के मरने के बाद उसके बारे में सचाई जानना कठिन हो जाता था।

वह एक बात जानते थे। यदि वह आत्मकथा लिखेंगे, तो अपने स्वयं के लिए लेकिन उसे उसी रूप में प्रकाशित करवाएँगे। यह हर कार्य में उनकी आदत बन गई थी। जो कुछ उन्होंने लिखा, प्रकाशित करवाया। इससे उनके सुरक्षित रहने में सहायता मिली। केवल चार-पाँच प्रतियाँ पर्याप्त होंगी। यदि मृत्यु के बाद लोग इसे सार्वजनिक बनाना चाहेंगे तो उनका स्वागत होगा। लेकिन जब तक वह जीवित रहेंगे, यह निजी रहेगी लेकिन उन्हें यह लिखनी थी और उन्होंने लिखी भी।

उनकी यह आत्मकथा सचमुच पठनीय है। यद्यपि यह गुजराती भाषा में अपने ढंग की पहली पुस्तक है, लेकिन इसमें रचनात्मक परिपक्वता के सारे गुण हैं। कवि ने कुछ जीवित व्यक्तियों के नामों का उल्लेख नहीं किया, क्योंकि उन्हें यह अनुचित लगा। लेकिन इसके बावजूद जीवन के विभिन्न चरणों की झाँकी का चित्रण सजीव और सत्य लगता है और उसमें वे सब तत्व हैं जो किसी आत्मकथा में होने चाहिए।

जैसा हम उल्लेख कर चुके हैं आत्मकथा लेखन की समाप्ति की तिथि १८ सितम्बर, १८६६ थी। कवि के जीवन में यह वर्ष बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस समय उनकी काव्य लेखन की शक्ति समाप्त न सही ढीली अवश्य पड़ गई थी

और उनका मानस जीवन काफी बदल चुका था। यों उन्होंने इसके बाद काफी कुछ लिखा, बहुत कुछ सोचा और बहुत कुछ योजना बनाई, लेकिन इस तारीख, महीने और वर्ष तक नर्मदाशंकर का जो दिलचस्प, बहुमुखी और तेज़ व्यक्तित्व था, इसके बाद बदला हुआ दिखता है।

मुझे विश्वास है इस बदले हुए नर्मदाशंकर पर नज़र डालना भी उतना ही रोचक होगा, जितना कि पहले पर था।

८

यह एक दुःखद बात है कि कवि के जीवन के अगले बीस वर्षों की घटनाओं और प्रेरक कारणों का उतना विस्तृत ब्यौरा भावी पीढ़ी के लिए उपलब्ध नहीं है, जितना उनके पहले युवा और उज्ज्वल ३३ वर्षों का उपलब्ध है। लेकिन यह निश्चित है कि इन वर्षों में भी उनकी अथाह क्षमता, उत्साहपूर्ण साहस और मानसिक तेज़ी बराबर बनी रही। यह सच है कि प्रारंभिक वर्षों में जितना अधिक काव्य लेखन हुआ, बाद में उतना नहीं, लेकिन यह भी सच है कि इन अंतिम २० वर्षों में भी उन्होंने बहुत सोचा, बहुत पढ़ा और बहुत लिखा। पहले जैसा उत्साह कम हो गया और अन्यान्य परिस्थितियों के कारण उनका स्वभाव काफी कुछ बदला भी, लेकिन पहले की तरह अडिग रहने और समझौता न करने की प्रवृत्ति सदा बनी रही। जैसा हमने देखा, उनकी आर्थिक स्थिति खराब हो चुकी थी और बाद के वर्षों में इससे उन्हें काफी मानसिक पीड़ा भी होती थी, लेकिन इसका प्रभाव उनके लेखन कर कतई नहीं हुआ। इसी तरह गुजराती साहित्य के ज्ञान की वृद्धि के लिए पूर्व बनाई गई योजनाओं को भी उन्होंने ठंडा नहीं होने दिया।

इस बात को सिद्ध करने के लिए एक उदाहरण पर्याप्त होगा। नर्मदाशंकर को किशोरावस्था में ही पुराने कवियों को पढ़ने का अवसर मिला था, क्योंकि उनके पिता द्वारा लिखकर दी गई इन कविताओं को एक प्रकाशक ने लीथो प्रेस में प्रकाशित कर दिया था। 'गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी' की एक नई योजना के अनुसार ऐसी अनेक कविताओं को 'गुजराती काव्य दोहन' शीर्षक के पहले संस्करण के रूप में प्रकाशित कर दिया। इस संस्करण में दलपतराम ने कोई भी कविता पूरी प्रकाशित नहीं की और लम्बी कविताओं के कुछ-कुछ सुन्दर अंश संग्रहित कर दिए थे। कविताओं का इस तरह तोड़ा जाना नर्मदाशंकर को पसन्द नहीं आया और उन्होंने अपने पत्र 'दांडियो' में इसकी कटु शब्दों में आलोचना की। दलपतराम ने नर्मदाशंकर की आलोचना की परवाह किए बगैर अगला

संस्करण प्रकाशित कर दिया और व्यंग्य करते हुए लिखा कि जो ऐसी कविताओं का इससे अच्छा संस्करण निकाल सकता हो, वह निकालकर दिखाए। इससे नर्मदाशंकर को एक नया विचार मिल गया। क्यों नहीं वह एक नए ढंग से इन कविताओं को प्रकाशित कर दें। लेकिन इसके लिए काफी धन की आवश्यकता होगी। उन्होंने झवेरीलाल उमियशंकर के साथ मिलकर गुजराती के साहित्य प्रेमी लोगों से २५ हज़ार रुपए के योगदान की अपील निकाली, ताकि गुजरात के पुराने कवियों की श्रेष्ठ कविताओं के कई संस्करण प्रकाशित किए जा सकें। साहित्य प्रेमी धनी वर्ग उन दिनों संकट का सामना कर रहा था, इसलिए इस अपील का लाभ तो नहीं हुआ, लेकिन यह विचार फलीभूत अवश्य हुआ, जबकि कुछ वर्षों बाद नर्मदाशंकर के एक शिष्य और प्रशंसक स्वर्गीय श्री इच्छाराम सूर्यराम देसाई ने 'वृहद काव्य दोहन' शीर्षक से ऐसे ८ संस्करण प्रकाशित कर दिए।

इस अपील का आशानुकूल परिणाम चाहे सामने न आया हो, लेकिन लोगों पर उनका प्रभाव इतना अच्छा था कि वह जो चाहते करवा सकते थे। इस संबंध में एक जागरूक अँग्रेज सर अलेक्जेंडर ग्रान्ट से कवि की मुलाकात की घटना उल्लेखनीय है।

नर्मदाशंकर को उनके दो मित्रों ने सर अलेक्जेंडर ग्रान्ट से मिलवाया। इस अँग्रेज़ सज्जन ने उनके प्रभाव का ध्यान रखते हुए सम्मानपूर्वक उनकी अगवानी की और उस समय उपस्थित प्रो० आक्सेनहाम और प्रो० बुलर से भेंट करवाई। कवि ने उन्हें अपनी पुस्तकें दिखाईं। ग्रान्ट प्रसन्न हुए और उन्होंने उनसे कविताएँ पढ़ने का आग्रह किया। कवि ने प्रेम भावनाओं सम्बन्धी एक कविता सुनाई और सर ग्रान्ट ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"आपने कितना सुन्दर पढ़ा है।" तब कवि ने उन कविताओं की व्याख्या भी की। वे और अधिक प्रसन्न हुए। नर्मदाशंकर ने बातचीत के दौरान सर ग्रान्ट को यह भी बताया कि वित्तीय कठिनाइयों के कारण वह अपनी और पुस्तकें प्रकाशित नहीं कर पा रहे हैं। ग्रान्ट ने उनसे आग्रह किया कि वह इसके लिए सरकार से आवेदन करें और वह पूरी कोशिश करेंगे कि उन्हें पर्याप्त राशि मिल जाए। लेकिन इसके बाद उन्होंने जो कुछ कहा, वह इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है। जब नर्मदाशंकर जाने लगे, तब ग्रान्ट ने उनसे कहा—'जो पहली कविता आपने हमें सुनाई है, उसका अनुवाद करके दे दीजिए। मैं इसे इंग्लैण्ड के अपने कवि मित्र लार्ड टेनीसन को भेजूँगा।'

दूसरे अँग्रेज मिस्टर होप ने भी इसी तरह उनकी प्रशंसा की और उन्हें आर्थिक सहायता दिलवाने का वायदा किया।

इन घटनाओं से दो बातें सिद्ध होती हैं। एक तो यह कि कवि अपनी भाषा के लोगों में ही नहीं अन्य लोगों में सुपरिचित थे और उनसे भी उन्हें पूरा सम्मान

मिलता था। दूसरी यह कि उनकी परिस्थितियाँ तनावपूर्ण हो गई थीं और आर्थिक स्थिति इतनी बिगड़ चुकी थी कि कहीं भी कुछ दिखने पर उन्हें झुकने को मजबूर कर देती थी। दुर्भाग्यवश, यह परिस्थिति उनके जीवन के अन्तिम क्षणों तक बनी रही और प्रारम्भिक जीवन के सुनहरे और प्रभावकारी दिनों के मुकाबले दुःखद और अपमानजनक होती गई।

लेकिन उनके इस भाग्य परिवर्तन के बावजूद नर्मदाशंकर ने कभी अपनी निगाहें नीचे नहीं की और न ही कभी वायदा खिलाफी की, चाहे इससे उन्हें कितनी ही कठिनाई क्यों न हुई हो। उनके अच्छे दिनों में उस व्यापारी मित्र कृष्णदास माधवदास ने उनकी सारी कविताओं के बड़े संस्करण 'नर्म कविता' के प्रकाशन का खर्च उठाने का वायदा किया था। लेकिन यह पुस्तक प्रकाशित होने से थोड़ा पहले ही मित्र को भारी घाटा हो गया और उस स्थिति में मित्र द्वारा इतनी बड़ी पुस्तक के प्रकाशन का खर्च उठाना सम्भव नहीं था। इस कारण पुस्तक के प्रकाशन के लिए नर्मदाशंकर को काफी कठिनाई हुई और कर्ज भी लेना पड़ा। बहरहाल संस्करण प्रकाशित होने पर उन्होंने इसे अपने पुराने मित्र कृष्णदास माधवदास को ही समर्पित करने का निश्चय किया, जबकि कई लोगों ने सलाह दी थी कि वह ऐसा नहीं करें और किसी ऐसे व्यक्ति के नाम समर्पित करें जो इसके प्रकाशन में उन्हें आर्थिक सहायता दे सके।

गुजराती के शब्दकोश 'नर्म कोश' तैयार करने में उन्हें जीवन में सर्वाधिक मेहनत करनी पड़ी, जिस पर उन्होंने १३ वर्ष की लम्बी अवधि तक काम किया था। इस प्रतिष्ठाजनक पुस्तक की तैयारी और प्रकाशन में उन्हें अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कई लोग, जिन्होंने समय-समय पर इसके प्रकाशन के लिए सहायता करने में दिलचस्पी दिखाई थी, किसी-न-किसी कारण से पीछे हटते गए। इसके अनेक कारणों में कवि द्वारा थोड़ा-सा भी उत्तेजित होने पर दोषारोपण का स्वभाव भी एक था। लेकिन जब समय आया तो इस काम को पूरा करने और इसके प्रकाशन को कोई रोक नहीं पाया। आज हमें यही कहना होगा कि इसके लिए उन्हें अपना खून-पसीना और अश्रु तक देना पड़ा, लेकिन उन्होंने इसे प्रकाशित किया। और १३ वर्षों तक की गई इस अथक मेहनत को उन्होंने किसे समर्पित किया? किसी धनी-मानी व्यक्ति को नहीं, बल्कि इसका लाभ उठाने वाले गुजरात के लोगों को। समर्पण के लिए उन्होंने जो सुन्दर कविता लिखी, वह आज तक गुजरात के साहित्यिक अथवा सांस्कृतिक महत्व के हर अवसर पर गाई जाती है। गुजरात के लोगों के लिए तो वह राष्ट्रीय गीत-सी हो गई है। हम विश्वास कर सकते हैं कि जब तक यह भाषा रहेगी, उसका वही स्थान रहेगा। गुजराती लोगों से जिनका सम्बन्ध होगा, उन्हें वह गीत 'जय-जय गरवी गुजरात' परिचित लगता होगा।

कवि के बाद के वर्षों में केवल इस कोश को पूरा करना और उसके प्रकाशन की बात ही कवि के दिमाग में नहीं थी, वरन अन्य क्षेत्रों में भी उनका ध्यान था। जैसे-जैसे उनकी प्रतिभा परिपक्व हुई और रुचि बढ़ी, इतिहास तथा व्यक्ति और समाज पर ऐतिहासिक शक्ति की भूमिका के अध्ययन में उनकी दिलचस्पी बढ़ती गई। कुछ समय तक तो वह इसी के अध्ययन में तल्लीन रहे। इसका फल सामने आने में भी देरी नहीं लगी। उन्होंने विश्व इतिहास पर एक बड़ी पुस्तक लिखी और उसे १८७१ तथा १८७६ में दो संस्करणों में प्रकाशित किया। इसके पूर्व उन्होंने महाकाव्यों का अध्ययन किया। उन्होंने रामायण, महाभारत और इलियड जैसे महाकाव्यों का कुछ गहराई से अध्ययन किया। इसका नतीजा यह हुआ कि १८७० में उन्होंने इनसे सम्बन्धित तीन पुस्तकें प्रकाशित कर दीं।

इन महाकाव्यों और इतिहास की पुस्तकों के अध्ययन से उनकी रुचि इतिहास और कविता में वर्णित महापुरुषों के बारे में हुई। उन्होंने सोचा कि इन महापुरुषों के सम्बन्ध में लिखना और कुछ प्रकाशित करना भी अच्छा होगा। इसलिए उन्होंने १८७० में ही 'महापुरुषों की जीवनियाँ' शीर्षक से एक पुस्तक प्रकाशित की।

अधिकाधिक लिखने-पढ़ने के साथ-साथ उनके घरेलू जीवन में भी एक नया नाटकीय मोड़ आया। इस नाटक ने भी गुजरात के लोगों को बहुत उद्वेलित किया और एक बार पुनः सम्पूर्ण गुजरात में वह चर्चा का विषय बन गए। यह नाटक भी १८७० में ही हुआ।

यह इस तरह हुआ। जैसा कि हम देख चुके हैं, नर्मदाशंकर महिलाओं के सम्पर्क में आने का अवसर नहीं चूकते थे। उनका आवेगी और रोमांटिक स्वभाव उन्हें उनकी तरफ खींचता था। वे भी अपनी तरफ से इनसे दूर रहना नहीं चाहती थीं। इस तरह १८७० में जब वह अन्य बड़ी-बड़ी योजनाओं में व्यस्त थे, उन्हीं दिनों अपने समाज की एक युवा विधवा महिला के सम्पर्क में आए। कवि ने उसका ध्यान रखना शुरू किया। महिला ने भी रुचि दिखाई। मामला यहाँ तक बढ़ गया कि महिला ने विवाह करने की माँग की। कवि चक्कर में पड़ गए। यह कैसे हो सकता है? वह पहले से विवाहित थे और उनका वैवाहिक जीवन सुखी भी था। विधवा ने इसकी चिन्ता नहीं की। उसने नर्मदाशंकर से कहा कि वह सदैव विधवा विवाह की बात करते रहे हैं और अब जब उन पर बात आ पड़ी है, तो उन्हें इस तरह नहीं भागना चाहिए। नर्मदाशंकर द्विविधा में फँस गए। उन्हें क्या करना चाहिए? उनके सामने प्रश्न था कि विवाह करें या न करें? विवाह करके वह एक गलत और भद्दा उदाहरण रखेंगे, क्योंकि उनके घर में पहले से सुन्दर पत्नी है। विवाह न करना, विधवा विवाह के लिए वर्षों से दिए जा रहे उपदेश को अमल में लाने से भागने जैसा होगा। वह निर्णय नहीं कर पाए, लेकिन यह कोई हल

नहीं था। इस दौरान वह महिला निरन्तर एक ही बात पर जोर देती रही, और वह थी—विवाह।

आखिरकार बहुत सोचने-विचारने के बाद वह इसी निश्चय पर पहुँचे कि अब उन्हें विवाह करने से नहीं बचना चाहिए। हाँ, उन दिनों में एक पत्नी के जीवित रहते लोग दूसरा विवाह भी करते थे। और फिर वह स्वयं यह नहीं करना चाहते थे, लेकिन उनके अन्दर का समाज सुधारक इस कदम की क्रियान्विति चाहता था। इसी तरह अन्तरात्मा हमें भीरु बनाती है। और नर्मदाशंकर भी इससे बचे नहीं थे, उन्होंने विवाह के लिए सहमति प्रदान कर दी।

लेकिन इससे अनेक प्रश्न खड़े हो गए। अपनी पहली पत्नी के लिए क्या किया जाए? उन्होंने उसे अनेक विकल्प सुझाए, जिनमें से एक यह था कि वह भी नई पत्नी के साथ उसी घर में रहे। यह बहुत कठिन परीक्षा थी, लेकिन एक अच्छी हिन्दू धर्मपत्नी दाही गौरी के साथ हुए वार्तालाप को लिख छोड़ा है। इस वार्तालाप में वह बहुत फीके दिखते हैं, जबकि उसकी पत्नी अधिक समझदार और साहसिक ढँग से सामने आती है। उनके सुधारवादी दृष्टिकोण, महिलाओं को सम्मान देने की भावना और उनकी स्थिति में सुधार के लिए किए गए कार्यों के बावजूद इस वार्तालाप से उनकी जो छवि बनती है वह एक ऐसे क्रूर पति जैसी है जो अपनी बातों को पत्नी के लिए कानून मानता हो, क्योंकि वह स्त्री है और वह पुरुष। यों इस वार्तालाप से नर्मदाशंकर की एक व्यक्ति के रूप में छवि धूमिल होती हो, इस बात के लिए उनकी सराहना की जानी चाहिए कि उन्होंने इसे भावी पीढ़ी के लिए लिखकर रखा।

अन्ततोगत्वा विवाह हो गया और परिणामस्वरूप उन्हें उनके समाज से बहिष्कृत कर दिया गया। सामाजिक दृष्टि से उन्हें जाति से बाहर कर दिया गया, लेकिन त्यागी मनोवृत्ति के कारण उन्होंने इसकी परवाह नहीं की।

उनकी कठिनाइयाँ बढ़ती गईं। आर्थिक दृष्टि से वह टूट चुके थे, अब समाज से भी अलग हो गए और उनकी जिम्मेदारियाँ बढ़ती गईं। इनकी नई स्वस्थ्य पत्नी ने उसी वर्ष एक बच्चे को जन्म दिया और घर में खाने के लिए एक मुँह और हो गया। भावनगर के एक उदार नागर सज्जन से कुछ आर्थिक सहायता मिल सकने की सम्भावना हो सकती थी, जिसने उनके कोश के लिए धन जुटाने का वायदा भी किया था, लेकिन भावनगर के नागरों पर 'दांडियों' में एक लेख लिखकर उन्होंने उसे भी नाराज कर दिया। इससे वहाँ से भी किसी तरह की सहायता मिलने की सम्भावना समाप्त हो गई।

लेकिन कमाना तो होगा ही। इसके बगैर कोई कैसे रह सकता है? अब तक केवल एक क्षेत्र बचा था, जिसमें उन्होंने कुछ नहीं किया था। उसमें सफल होने पर कुछ अच्छे पैसे मिलने की सम्भावना हो सकती थी। यह क्षेत्र था—गुजराती

रंगमंच के लिए अच्छे नाटक लिखने का। उन दिनों में गुजराती रंगमंच का विकास हो रहा था और इस बात की पूरी आशा थी कि इस दिशा में किया जाने वाला काम फलदायी हो सकता है। इसलिए उन्होंने इस क्षेत्र में अधिकार न होने के बावजूद नाटक लिखने प्रारम्भ किए।

जब उन्होंने १८७६ में पहला नाटक 'राम-जानकी दर्शन' प्रकाशित किया, तब उनमें शारीरिक रूप से अधिक शक्ति नहीं रह गई थी। प्रारंभिक जीवन में शरीर पर की गई ज्यादतियाँ सामने आने लगी थीं। और काम यानी, लगातार लिखना, और लिखना चलता जा रहा था। यह कवि का अच्छा समय नहीं था।

और १८७६ से १८८१ तक की अवधि में लिखे गए चार नाटकों ने भी उन्हें कोई विशेष आनन्दित नहीं किया। इससे उन्हें कुछ पैसा मिल गया और उनके कुछ मित्रों ने, जो उनकी लेखनी के कायल थे, भी उनकी प्रशंसा की, लेकिन लोगों ने मोटे तौर पर उन्हें अधिक पसन्द नहीं किया और न ही इनसे उनकी प्रसिद्धि में कोई वृद्धि हुई। लेकिन जिद्दी स्वभाव वाले नर्मदाशंकर पाँच वर्षों तक वही लिखते रहे और १८८३ में उन्होंने अपने जीवन का अंतिम नाटक 'बालकृष्ण विजय नाटक' लिखा।

ये वर्ष परीक्षाओं और घोर कष्ट के रहे हों, लेकिन उनमें भी आनन्द के क्षण आते थे। उस समय एक नया लेखक सामने आ रहा था, जो आगे जाकर गुजराती साहित्य का पहला महान समालोचक बना। इसका नाम नवलराम त्रिवेदी था और वह भी नर्मदाशंकर के गृहनगर सूरत का था। उसने एक पत्रिका में नर्मदाशंकर पर एक लेख लिखा। इस लेख में अब तक हुए गुजराती भाषा के महानतम कवि प्रेमानन्द तक को नर्मदाशंकर से पीछे रख दिया गया था। लेकिन बाद में जब नवलराम को अपनी गलती दिखाई दी और वह अपनी स्थिति बदलने लगा, तो नर्मदाशंकर उससे सहमत नहीं हुए। उन्होंने एक पर्चा लिखा, जिसमें नर्मदाशंकर ने होमर को महानतम कवि के रूप में आदर्श निरूपित किया उन्हें उनके नाम के आगे १०० अंक दिए। तब उन्होंने स्वयं ही बहस की। यदि महान कवि एक सौ अंक प्राप्त करते हैं, तो उन्हें कितने मिलेंगे, नर्मदाशंकर और प्रेमानन्द कितने-कितने अंक प्राप्त करेंगे? काफी हिसाब-किताब करने और गहराई से सोचने के बाद उन्होंने प्रेमानन्द के नाम के आगे ६० और अपने नाम के सामने ७० अंक अंकित किए। यह पर्चा उन्होंने भविष्य के लिए सुरक्षित रख दिया और इससे मनुष्य के अहम् का अंदाज लगता है। इस पर्चे में गरीब दयाराम को, जिन पर नर्मदाशंकर ने शोध किया था और जिनकी कविताओं की पुस्तक को उन्होंने १८६० में सम्पादित और प्रकाशित किया था और जो किसी भी स्तर पर महान गीतकार थे, नर्मदाशंकर ने सिर्फ़ ४० अंक दिए थे। इस बात से हमें चाहे हँसी भर आए, लेकिन इससे कवि को अवश्य बहुत प्रसन्नता हुई होगी।

तब भी अनुग्रह कम था और कठिनाइयों का अम्बार। १८७५ तक स्थिति इतनी खराब हो गई कि घर चलाना तक असम्भव हो गया। कवि को सलाह दी गई कि वह वापस बम्बई चले जाएँ। उन्हें कहा गया कि बम्बई में उनके अनेक प्रशंसक हैं और आवश्यकता की इस घड़ी में वे उनकी सहायता करेंगे।

पुनः बम्बई वापस जाने का निर्णय करना एक कठोर बात थी। लेकिन और कोई रास्ता नहीं था। इसलिए मार्च १८७५ में कवि परिवार सहित बम्बई आ गए।

बम्बई में उनके मित्रों ने स्वागत किया और उनसे मिलने के लिए बड़ी संख्या में उनके घर पहुँचे। वे सभी समाजों के थे। प्रबुद्ध हिन्दुओं के अलावा नानाभाई रुस्तमजी रानीना जैसे पारसी और गणेश श्रीधर खापर्डे जैसे महाराष्ट्रीय मित्र भी थे, जो उनके पास नियमित रूप से जाते थे। सभी तरह के विषयों पर चर्चा और वाद-विवाद होते थे, लेकिन प्रमुख समस्या का कोई हल नहीं निकला। वहाँ इतनी अधिक मित्रता और प्रतिदिन समाज में बढ़ रही लोकप्रियता तथा प्रतिष्ठा के बावजूद पैसा अधिक नहीं आ रहा था। उदाहरण के लिए थिआसफी विचार-धारा वाली मेडम ब्लावात्स्की बम्बई गई, तो कर्नल एलकाट और कुछ अन्य मित्रों के साथ नर्मदाशंकर के घर पहुँची। उन्होंने कवि से इस नए मत को बढ़ाने के लिए सहायता चाही। कवि ने बहुत मित्रतापूर्ण ढँग से स्वागत किया और बाद में अपनी तरफ़ से मिलने भी गए और उनकी ऐसी अनेक सभाओं में भी गए, जहाँ मेडम ब्लावात्स्की ने अपने सिद्धान्त और दर्शन पर व्याख्यान दिए थे। इससे पूर्व वह स्वामी दयानन्द और उनके आर्य समाज से प्रभावित थे। लेकिन धीरे-धीरे इस मत और इसके तरीकों पर से उनका विश्वास उठता गया और उन्होंने बिना कोई कारण बताए उन पर अपनी असहमति की घोषणा कर दी। वह स्वयं अनेक व्याख्यान दे रहे थे और अनेक साहित्यिक योजनाओं के लिए सलाह भी दे रहे थे। उदाहरण के लिए नर्मदाशंकर के प्रशंसकों और शिष्यों में से एक इच्छाराम सूर्यराम देसाई ने बम्बई से एक पत्रिका निकालनी चाही और इसके नाम के लिए नर्मदाशंकर से सलाह ली। नर्मदाशंकर ने निःसंकोच कहा—"हम गुजरात के रहने वाले हैं और हमें इस बात का गौरव भी है कि हम गुजराती हैं। इसलिए क्यों नहीं इस पत्रिका का नाम 'गुजराती' रखा जाए?" इच्छाराम ने यह सुझाव स्वीकार कर लिया और पत्रिका प्रारम्भ हो गई। इस पत्र ने अत्यधिक सफलता प्राप्त की और गुजरात की पत्रकारिता के इतिहास में एक स्तम्भ के रूप में माना गया।

इस तरह की मान्यता और सम्मान उनके लिए बहुत था लेकिन धन का अभाव था। कई बार घर में नगदी तक बहुत कम रहती थी। उनके साथ रहने वाले मित्र और पत्नी किसी तरह काम चलाते रहे लेकिन दिनों-दिन स्थिति

बिगड़ती ही गई। कठिनाइयों के इस अम्बार के बावजूद अब तक किसी तरह दो बातों के लिए तैयार नहीं थे—कोई पूर्णकालिक नौकरी करने के विचार को स्वीकारने अथवा सुनहरे दिनों वाली उदारता कम करने के लिए। इन दिनों की कुछ घटनाएँ उन्होंने स्वयं भविष्य के लिए लिख छोड़ी थीं। एक व्यक्ति किसी आवश्यकता के कारण उनके पास आया और उन्हें अपनी कला से प्रभावित किया। उस समय कवि के पास सिर्फ़ एक रुपया था, जो उन्होंने प्रशंसा के रूप में उसे दे दिया। उस व्यक्ति ने यह पुरस्कार तो स्वीकार लिया लेकिन कहा कि वह कवि के पास बड़ी आशा लेकर आया था। तनिक भी हिचकिचाहट किए बगैर कवि ने अपने कंधों पर पड़ा हुआ महँगा शाल उसे दे दिया। एक अन्य अवसर पर क़रीब ६० वर्ष का एक वृद्ध उनके एक मित्र का पत्र लेकर आया। मित्र ने उसकी कुछ सहायता की सिफ़ारिश की थी। नर्मदाशंकर ने अपने साथ सहायक के रूप में कार्य कर रहे मित्र से उसे एक सौ रुपए देने के लिए कहा। यह सहायक जानता था कि घर में सिर्फ़ सात रुपए हैं। वह इस वृद्ध व्यक्ति को चुपचाप एक तरफ़ ले गए और कुछ दिन बाद आने को कहा। नर्मदाशंकर ने भी यह सुना और उन्हें स्थिति का पता चला। कुछ दिनों बाद ही जब वह मित्रों के साथ बैठे हुए थे, पोस्टमैन उस दिन की डाक दे गया। उनमें से एक लिफ़ाफा खोलने पर कवि को एक हज़ार रुपए के करेंसी नोट मिले। इसके साथ कोई पत्र नहीं था, लेकिन एक छोटी-सी पर्ची लगी थी, जिसमें लिखा था—आपके घनिष्ठ मित्र और प्रशंसकों की ओर से। नर्मदाशंकर ने यह नोट सहायक को दिए और कहा—इसमें से पहले एक सौ रुपए उस व्यक्ति के लिए अलग रख देना, जिसे हमने बाद में आने को कहा था और शेष घर के तथा अन्य खर्च के लिए उपयोग कर लो।

इस तरह की अचानक मिलने वाली सहायता के बावजूद १८८२ में एक दिन ऐसा आया, जब कि घर में खाने तक को कुछ नहीं था। केवल चवन्नी के अलावा कुछ नहीं था। जब कवि को इस बारे में बताया गया तो उन्होंने मुस्कराकर कहा—'यह भी जीवन का एक दौर है।' उन्होंने इससे कुछ फूले हुए चावल लाने को कहा और उसी का भोजन किया।

बहरहाल नर्मदाशंकर इसे सम्मानजनक ढंग से लेते अथवा दुःखद रूप से, लेकिन स्थिति कठिनतम हो गई थी। उनके मित्रों ने सोचा कि कुछ करना चाहिए और वह भी जल्दी ही। वे जानते थे कि कवि उस बात को सहजता से नहीं स्वीकारेंगे, जो उनके दिमाग में है। इसलिए उन्होंने गुप्त रूप से उन्हें जानकारी दिए बगैर गोकुलदास तेजपाल न्यास के न्यासियों से सम्पर्क कर आग्रह किया कि वे न्यास के सहायता विभाग में एक सौ रुपए प्रति माह के वेतन पर सचिव के रूप में कार्य करने का प्रस्ताव नर्मदाशंकर के सामने रखें।

एक दिन जब कवि अपने कुछ घनिष्ठ मित्रों के साथ बैठे थे, इस सहायतादात्री

संस्था का पत्र लेकर पोस्टमैन वहाँ पहुँचा। जैसे ही नर्मदाशंकर ने पत्र खोलकर पढ़ा, उनकी आँखों में आँसू छलछला आए। वहाँ उपस्थित मित्र पत्र के बारे में जानते थे, लेकिन एक भी शब्द बोले बगैर उन्होंने शांतिपूर्वक कवि पर पत्र से हुए प्रभाव को समझा। एक शब्द भी निकाले बगैर नर्मदाशंकर ने एक मित्र के सामने वह पत्र फेंक दिया।

एक क्षण कोई कुछ नहीं बोला। आखिरकार नर्मदाशंकर ने स्वयं बोलना प्रारम्भ किया। उनका गला भरा हुआ था। 'तो बात इस सीमा तक पहुँच गई न? मैं पिछले २४ वर्षों से नौकरी ठुकराता रहा हूँ और अब? मुझे चुपचाप नौकरी स्वीकारनी होगी। आप सब यही चाहते हैं न? तब ठीक है, ऐसा ही होगा। मैं इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लूँगा। लेकिन मैं एक बात कह देता हूँ। मेरा दिल इस तूफ़ान को लम्बे अर्से तक नहीं झेल पाएगा। मुझे लगता है कि अब मेरा अन्त नज़दीक आ गया है।'

कवि ने जैसे ही अपनी बात पूरी की, सबकी आँखें भरी हुई थीं, लेकिन और कोई चारा भी नहीं था। कवि को उनकी स्वामिभक्त पत्नी दाहीगौरी के पास अकेला छोड़कर वे सब भारी मन से बाहर आ गए। कवि ने पत्नी से कहा—'प्रिये, तुम्हारा राजा गुलामी करने जा रहा है।' बेचारी पत्नी आँसू बहाने के अलावा कर ही क्या सकती थी?

अंतिम निर्णय लेने में क़रीब सात-आठ दिन और लगे। आखिरकार यह तय हुआ कि इन परिस्थितियों में नर्मदाशंकर को यह नौकरी स्वीकार लेनी चाहिए। उन्होंने भी इसके लिए सहमति दे दी। और एक दिन सुबह नर्मदाशंकर न्यास के एक चपरासी के साथ दफ्तर के लिए रवाना हुए। रवानगी के समय खापर्डे जैसे उनके कुछ मित्र वहाँ उपस्थित थे। कवि ने एक बार मुड़कर उनसे कहा—'मित्रो, मैं २४ वर्षों बाद नौकरी करने जा रहा हूँ। मैं अपनी उस प्रतिज्ञा का पालन नहीं कर पा रहा हूँ, जो मैंने २४ वर्ष पहले सिर्फ़ सरस्वती के अलावा किसी की सेवा नहीं करने की ली थी।' तब उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—'इधर देखो, मैं गुलामी करने जा रहा हूँ।' वहाँ उपस्थित सभी लोगों की आँखों में आँसू थे। उनके मित्र और जीवनी लेखक नवलराम के अनुसार उस दिन के बाद से उनकी मृत्यु के दिन तक किसी ने नर्मदाशंकर के चेहरे पर कभी मुस्कान नहीं देखी।

इन वर्षों के दौरान उनकी बाहरी परिस्थितियों में ही नहीं आंतरिक मनः-स्थिति में भी परिवर्तन आया। इस परिवर्तन ने कवि के उन सभी दृष्टिकोणों को भी बदल दिया, जिनके बारे में उनकी राय काफ़ी भिन्न और दृढ़ थी। वह और अन्य लोग पहले जिन समाज सुधारों की वकालत करते थे, अब उनके लिए निरर्थक हो गए थे। इसके विपरीत वह यह अनुभव करने लगे थे कि समाज सुधारकों के पैर चिकनी मिट्टी में थे और उनके सुधार आंदोलन अनुचित, क्योंकि

इसकी जड़ें भारत के प्रतिभावान लोगों में नहीं थी उनके इतिहास और शास्त्रों के अध्ययन, सुधार आन्दोलन के उनके अपने अनुभव और इन परिपक्व वर्षों के उनके चिन्तन तथा अनेक बातों से उन्हें विश्वास हो गया कि अब तक वे गलत रास्ते पर थे और इन सभी समस्याओं पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। वह उन पर पुनर्विचार के लिए बैठे और इस सम्बन्ध में लेख लिखे। उन्हें यह देखकर आश्चर्य और दूसरों को हैरानी हुई कि धीरे-धीरे वह रूढ़िवादी होते जा रहे हैं, जिससे उन्हें पहले बहुत घृणा थी। लेकिन अपने निष्कर्षों के प्रति उन्हें पूरा विश्वास था और उन्होंने उसी जोर-शोर से उनका प्रतिपादन किया, जिससे उन्होंने उनके विरुद्ध आवाज़ उठाई थी। इस बदले हुए रूप पर लोगों द्वारा हँसने की उन्होंने उसी तरह चिन्ता नहीं की, जिस तरह वैष्णव महाराज के साथ शास्त्रार्थ करते समय व्यक्त किए गए विचारों से लोगों द्वारा मारे जाने की चिन्ता उन्हें नहीं थी। उनके लेख कई वर्षों तक आते रहे और उनमें विभिन्न क्षेत्रों और समस्याओं को छुआ गया था। १८८६ में, जिस वर्ष उनकी मृत्यु हुई, उनके बदले हुए दृष्टिकोण वाले इन लेखों का एक संकलन प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक का नाम भी ठीक ही रखा गया 'धर्म विचार।'

इस पुस्तक के प्रकाशन ने तूफ़ान खड़ा कर दिया। लोग जितने नाराज़ थे, उतने ही विस्मित भी। उनकी मृत्यु के क़रीब ९३ वर्ष बाद भी, कवि के इस सम्पूर्ण परिवर्तन के आश्चर्यजनक कारणों को नहीं समझा जा सका है। उनके जीवन का अध्ययन करने वाले छात्र इस अप्रत्याशित परिवर्तन के बारे में सिर्फ़ अटकलें ही लगा पाते हैं।

लेकिन इस परिवर्तन में भी वही दृढ़ता थी। यदि कोई ध्यान से देखे, तो उसे यही लगेगा। इस नई भूमि में भी इस व्यक्ति में दृढ़ता गैर समझौतावादी प्रवृत्ति, निर्भयता आदि के सभी गुण मौजूद थे। पहले की तरह के दुःसाहसी और हठी स्वभाव में भी बाद में कोई अन्तर नहीं आया। हाँ, बस इतना अन्तर अवश्य हुआ कि कुछ उचित पेशकश की जाने पर वे बात मानने लगे और अधिक परिपक्व गद्य लिखने लगे।

इस तरह का मानसिक, शारीरिक, आर्थिक और संघर्ष का दबाव नर्मदाशंकर जैसे कड़े मन वाले दृढ़ व्यक्ति को भी तोड़ने के लिए पर्याप्त था। मृत्यु से काफ़ी पहले ही उनका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। न्यास द्वारा जैसे-जैसे नई योजनाएँ हाथ में ली जा रही थीं, उनका दफ्तर का काम भी निरन्तर बढ़ता जा रहा था। इस कारण उन्हें घर पर भी देर रात तक काम करना पड़ता था और अगली सुबह फिर नियमित रूप से दफ़्तर जाना पड़ता था। उनके लिए इतना बोझ संभालना कठिन हो गया और उनका वज़न तथा स्वास्थ्य गिरता ही चला गया। एक-दो बार वह अचेत भी हुए। १८८५ में उन्हें यह नौकरी छोड़नी पड़ी।

नौकरी छोड़ने के बाद उनकी जो हालत थी, उसमें शरीर को सम्भाल पाना कठिन ही था। निराशा और बीमारी ने उन्हें पूरी तरह जर्जर कर दिया। उनके चिकित्सक मित्रों ने उनके कष्ट दूर करने के लिए पूरे प्रयास किए, लेकिन वह बढ़ते ही गए। उन्हें थोड़ी-सी भी राहत नहीं मिली।

५३ वर्ष की उम्र में उनका अन्त आ गया। इसी दिन दोपहर को अपनी पत्नियों और पुत्र तथा पुराने मित्रों के सामने इस रोमांटिक एवं बहुल प्रतिभा-सम्पन्न आधुनिक गुजराती साहित्य के निर्माता तथा गुजराती के सामाजिक एवं साहित्यिक जगत के सशक्त नेता ने शरीर को त्याग दिया।

१०

इस व्यक्ति और उसके कार्य का उसके जन्म के १४४ वर्ष और मृत्यु के ९३ वर्ष बाद मूल्यांकन करते समय किसी को भी नर्मदाशंकर की अथक क्षमता और असाधारण फुर्ती पर आश्चर्य ही होगा। वह अच्छे और बुरे, दोनों ही से गुज़रे और जैसा समय रहा उन्होंने उसी ढँग से अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त की। उन्होंने गलतियाँ कीं और कौन नहीं करता? और इसके परिणाम भी उन्हें भुगतने पड़े, लेकिन गलत ही सही, सफल हो या असफल, एक महत्वपूर्ण बात तो याद रखनी ही होगी कि वह अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक काम करते रहे और अपनी मान्यतानुसार सत्य के लिए लड़ते रहे, चाहे एक बार जिस 'सत्य' के लिए उन्होंने आवाज़ उठाई थी, जीवन के अंतिम समय में उसके बिल्कुल विपरीत 'सत्य' का प्रतिपादन उन्होंने किया। इसलिए यह नहीं भूलना चाहिए कि अब तक उनका जो खाका खींचा गया है, वह व्यक्ति और लेखक के काम तथा क्षमता का मूल्यांकन के लिए है।

जैसा उल्लेख किया जा चुका है, गुजरात के लोग नर्मदाशंकर को कवि नर्मद अथवा कवि नर्मदाशंकर के रूप में जानते हैं। उनकी अन्य जो भी योग्यताएँ और योगदान रहा है, उन्हें याद किया जाए अथवा भुला दिया जाए, इतना निश्चित है कि वह कवि के रूप में हमेशा याद किए जाएँगे।

नर्मदाशंकर ने जिस अवधि में अपनी अधिकांश कविताएँ लिखीं—१८५५, जब उन्होंने पहली कविता लिखी, से लेकर १८६६ तक जब उन्होंने काव्य लेखन बन्द-सा कर दिया था—सिर्फ ११ वर्षों की अवधि है। लेकिन इन ११ वर्षों में भी उन्होंने कविता का बहुत बड़ा भंडार दिया और इस साहित्यिक योगदान पर उन्हें स्वयं भी गौरव था। इसमें कोई शक ही नहीं हो सकता कि वह गुजराती में

आधुनिक कविता के प्रणेता थे।

जिस समय वह गुजराती जनजीवन और साहित्य के प्रकाश में आए, उस समय साहित्य मध्ययुग से आधुनिकता की ओर बढ़ रहा था। भारत में ब्रिटिश राज्य पूरी तरह स्थापित हो चुका था और लम्बे अर्से से एक ही ढंग से जीने वाले भारतीय एकाएक जीवन के बिल्कुल बदले हुए स्वरूप और नए ढंग के सम्पर्क में आए थे। चूँकि वे लोग शासक वर्ग से आते थे और इसलिए सफल तथा शक्तिशाली होते थे, इसलिए यहाँ के लोगों ने यह अनुभव किया कि वे जीवन के सत्य का प्रतिनिधित्व करते हैं और उनके अपने जीवन के तरीक़ों, विचारों और व्यवहार में परिवर्तन की आवश्यकता है। यह प्रभाव इतना गहरा और शक्तिशाली था कि इसने भारतीय जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित किया। जब यह प्रभाव जमा ही था, नर्मदाशंकर युवावस्था में पहुँचे थे। फिर उनका सौभाग्य था कि उन्हें अँग्रेज शिक्षकों से शिक्षा पाने का अवसर मिला था और इससे उन पर सीधा—व्यक्तिगत प्रभाव भी हुआ था। अँग्रेज़ी कविता पढ़ने वाला कोई भी व्यक्ति उस समय कविता के व्यक्तित्व अथवा आत्मनिष्ठ तत्व से नहीं बच सकता था। उन दिनों के भारत में काव्य, विशेष रूप से गुजराती काव्य में वह वैयक्तिक तत्व, दयाराम जैसे कवि के बोधगम्य और गायनशैली वाले काव्य में भी नहीं होता था। कोई भी कवि पूरी तरह वैयक्तिक अथवा चेतनामूलक भावना से नहीं बच सकता था, लेकिन उस समय से पहले गुजराती कवि अपनी वैयक्तिक भावनाओं को वस्तुनिष्ठ आवरण में दबाकर व्यक्त करते थे, जबकि वे प्रेम के सम्बन्ध में लिखते थे। प्रेम की चर्चा करने पर वह कविता में अपना या अपनी प्रेमिका का उल्लेख करने के बजाय कृष्ण को नायक तथा राधा को नायिका बनाकर प्रस्तुत करते थे। यह ठीक है कि इन अनन्त प्रेमियों को प्रतीक बनाकर वह अपनी व्यक्तिगत भावनाओं को प्रस्तुत करते थे, लेकिन सदैव इस तरह का आवरण रखने के कारण समाज की आवश्यकतानुसार उन्हें उसकी अभिव्यक्ति करना असम्भव हो जाता था। नर्मदाशंकर द्वारा कविता लिखना प्रारम्भ करने से तीन वर्ष पहले १८५२ में जिस मध्ययुगी गुजराती कवि दयाराम का निधन हो गया था, उसने बहुत सुन्दर प्रेम गीत लिखे थे, लेकिन वे सब उसी पुराने ढंग से लिखे गये थे और उनमें वैयक्तिकता का अभाव था।

इसलिए नर्मदाशंकर और अन्य कवियों को केवल अँग्रेज़ी कविता के प्रभाव मात्र से ही वैयक्तिकता का पुट प्रभावशाली नहीं लगा था। वरन् उनके आसपास का जीवन भी कुछ ऐसा हो गया था कि कवि आलोचना सुनने की अपेक्षा वैयक्तिक पुट देना अधिक अच्छा समझता था। युवा नर्मदाशंकर नेतृत्व की साहसिकता के कारण वैयक्तिकता के साथ लिखने लगे। हम यह नहीं जानते कि उन्होंने यह महसूस किया था या नहीं कि वह एक नए युग की शुरुआत कर रहे

हैं, लेकिन तय यही है कि उनके इस कदम से नए युग की शुरुआत हुई थी। फिर उनका स्वभाव भी ऐसा था कि वह आत्मनिष्ठ अथवा वैयक्तिक हुए बग़ैर नहीं रह सकते थे। मानवीय अभिव्यक्ति के लिए वह अपने स्वयं में अधिक तल्लीन भी रहते थे। इससे उनकी कविता का स्वरूप ही बदला हुआ था, लेकिन नर्मदाशंकर ने गुजराती कविता का सिर्फ ढँग ही नहीं बदला वरन उसके अनेक आयामों में परिवर्तन किया।

गुजरात के गीति-काव्य में आत्ममूलक पुट की शुरुआत करने के अलावा नर्मदाशंकर ने गुजराती साहित्य की कविता में पहली बार स्वतंत्र रूप से प्रकृति का चित्रण किया। इससे पूर्व भी काव्य में प्रकृति का वर्णन अवश्य होता था, लेकिन उसे स्वतन्त्र रूप से विषय बनाकर कुछ नहीं लिखा गया था। नर्मदाशंकर का रोमांटिक स्वभाव उन्हें बहुत प्रसन्नता के अवसरों पर भी मित्रों से दूर रखता था और वह अकेले रहना पसन्द करते थे। ऐसे समय प्रकृति उनका साथ देती थी और अपनी सुन्दरता से मोहती थी। वह अपनी कविताओं में उस सौंदर्य का वर्णन करते थे और इस तरह उन्होंने गुजराती साहित्य में प्रकृति-काव्य की नींव रखी।

वह घूमना-फिरना भी बहुत पसन्द करते थे और उन दिनों में यात्रा कठिन कार्य हुआ करता था। उन यात्राओं से मिली प्रेरणाओं के परिणाम स्वरूप उन्होंने तन्मय कर देने वाली कविताएँ लिखीं और वे कविताएँ भी इस भाषा में अपने ढँग का पहला प्रयोग थीं।

रोमांटिक और आवेगी स्वभाव के कारण वह अनेक प्रेम प्रसंगों से जुड़े और इससे भी उन्हें लेखन की काफ़ी सामग्री मिली और वह भी गुजराती भाषा में बिल्कुल नई थी।

उन्हें अपने देश से सच्चा और गहरा लगाव था और उन्होंने देश-प्रेम सम्बन्धी अनेक कविताएँ लिखीं। इससे पूर्व लिखना तो दूर, शायद किसी ने इस विषय में सोचा तक नहीं था। यह अँग्रेजी शिक्षा और भावनाओं का प्रभाव भी था।

फिर, नर्मदाशंकर एक महान संघर्षशील व्यक्ति थे और उन्होंने अपने जीवन में काफ़ी संघर्ष किया। यों उनकी अधिकांश लड़ाइयाँ सामाजिक मोर्चे पर होती थीं, लेकिन वह सदैव लोगों को भी इस लड़ाई में शामिल करने की शब्दावली का उपयोग करते थे। उनकी कुछ कविता गुजराती भाषा में काफ़ी सशक्त और प्रेरक थी। इस तरह की अनेक कविताओं की पंक्तियाँ आज तक गुजरात के परिवारों में गाई जाती हैं।

एक महान समाज सुधारक होने के कारण उनकी काफ़ी कविताओं में कवि के इस मानसिक उतार-चढ़ाव की झलक मिलती है। उनकी आत्मपरक कविताओं में से एक लम्बी कविता 'बजेसाँग और घन्दबा' में एक हिन्दू नायक और मुस्लिम नायिका प्रेम होने के कारण विवाह कर लेते हैं, जो बात उन दिनों में

न सुनी जाती थी और न ही सोची जा सकती थी। वह स्त्रियों की स्वतन्त्रता के कट्टर समर्थक थे और विधवा-विवाह के लिए भी आवाज उठाते थे, क्योंकि उस समय विधवाओं की स्थिति काफ़ी खराब रहती थी। उन्होंने विधवाओं के कष्टों पर कविताएँ लिखीं और उनके स्वतन्त्र जीवन की आवश्यकता भी बताई।

उन्होंने बहुत कुछ किया और वह किसी भी व्यक्ति के लिए नए युग के प्रणेता के रूप में साबित करने के लिए पर्याप्त है, लेकिन उनके इस काव्य के काव्यात्मक रूप को क्या कहा जाए ? उनके पहले भी कवि थे और बाद में भी—उनकी तुलना में नर्मदाशंकर को कहाँ रखा जाएगा ?

जब हम इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास करते हैं, तो दुर्भाग्यवश इसका उत्तर बहुत सराहनीय नहीं बन पाता। यह सच है कि उन्होंने बड़ी संख्या में कविताएँ लिखीं। लेकिन काव्य के रूप में वह बहुत कलात्मक नहीं है। वह बहुत अधिक अपरिष्कृत, अशिष्ट, अस्पष्ट और कहीं-कहीं अश्लील भी है। इसमें सदैव सांस्कृतिक आत्मा अथवा कला के दर्शन नहीं होते। अपने समय में वह बहुत भावना प्रधान भी थी, लेकिन भावनाओं के बावजूद कई बार वह अरुचिकर हुई है। उनकी कुछ कविताओं में आई वीभत्सता, अशिष्ट और घटिया स्तर से शर्मनाक स्थिति तक पहुँच गई। उन्होंने काव्य पर पुस्तकें लिखीं और कविता के सभी सिद्धान्तों को वह अच्छी तरह जानते थे, लेकिन कई स्थानों पर उनकी कविता, कविता नहीं लगती। उनकी कई कविताओं में उनकी व्याख्या करने के लिए बड़ी-बड़ी टिप्पणियाँ हैं, लेकिन इससे वे और खराब हुई हैं। या तो वह अर्थ भ्रम पैदा करता है अथवा उसकी व्याख्या कविता के वास्तविक शब्दों से मेल नहीं खाती। किसी दृष्टि से वह महान कवि नहीं हो सकते। रस-शास्त्र सम्बन्धी पुस्तकें लिखने और अँग्रेज शिक्षकों से प्राप्त शिक्षा के दौरान भी काव्य-शास्त्र का पर्याप्त अध्ययन करने के बावजूद, ऐसा लगता है जैसे वह कविता के लिए आवश्यक गुणों को नहीं जानते थे। कविता के गुण सम्बन्धी तथ्य का अभाव उस समय सदैव स्पष्ट होता है, जब नर्मदाशंकर कविता के आवश्यक तत्वों की चर्चा करते हैं। वह गुजराती में इस तत्व को 'जोस्सो' कहते हैं, जिससे उनका मतलब भावनात्मक प्रेरणा से है। और यह सच है कि कविता में भावना का आवेग होना चाहिए और अधिकतर भावना के वगैर कविता हो भी नहीं सकती, लेकिन अच्छी कविता का केवल यही एकमात्र तत्व या गुण नहीं है। नर्मदाशंकर नए ढंग की कविता लिख रहे थे और वह इस तत्व को ही अनिवार्य समझते थे। उनकी मान्यता थी कि यदि यह तत्व है, तो स्वतः सब कुछ आ जाएगा, वरना कुछ नहीं निकलेगा। जार्ज सेन्ट्सबरी ने कहीं लिखा था कि कवि को उनकी कला की आवश्यकता के सम्बन्ध में गलत धारणा और विश्वास उन्हें पथभ्रष्ट कर देते हैं। नर्मदाशंकर के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ है।

तब उन्हें कवि के रूप में मिली मान्यता का स्पष्टीकरण क्या होगा ? उनके समय के बाहरी कारणों में वह स्पष्टीकरण झूठा होगा। वह जो कुछ कर रहे थे, नया और अनोखा था। इससे पहले कभी किसी ने ऐसा नहीं किया था। फिर वह एक बहादुर योद्धा की तरह समाज से लड़ाई लड़ रहे थे। वह अपराजेय थे। और इस सब के अलावा उस समय के लोगों को वास्तविक कविता के गुणों की अधिक जानकारी भी नहीं थी, जो वह लिखने का प्रयास कर रहे थे। उन्हें स्वयं अभिव्यक्ति की तलाश थी और उनके जैसे व्यक्ति के लिए एक कमजोरी, एक नई योग्यता सी लगती थी। उन्होंने लोगों को भी इस तरह मोहित कर रखा था कि वे भी उनमें विश्वास करते थे। फिर उन दिनों उस भाषा में कोई नाम लेवा आलोचक नहीं था और नवलराम ने भी आलोचना के क्षेत्र में क़दम ही रखा था तथा वह स्वयं नर्मदाशंकर की ख्याति से बहुत अधिक प्रभावित था।

इस तरह नर्मदाशंकर को कवि कहने के बावजूद और एक नया माध्यम खोजकर उस ढँग से लिखने के तथ्य को स्वीकारने पर भी कोई दृढ़तापूर्वक उन्हें 'महान' कवि नहीं कह सकता। और यह बात इस तथ्य को मानने के बावजूद भी ठीक है कि वह स्वयं और उस समय के आलोचक भी उस भाषा के तत्कालीन कवियों में उन्हें श्रेष्ठ मानते थे। यह राय सिर्फ़ समकालीन निर्णय पर मानी जाएगी। अधिक-से-अधिक आज हम यह कह सकते हैं कि उनमें अच्छे कवि बनने की पूरी सम्भावनाएँ थीं और काव्यात्मक पुट भी था, लेकिन दुर्भाग्यवश वह उन सम्भावनाओं का परिपक्व रूप में उपयोग नहीं कर सके।

उन्हें गुजराती काव्य में एक नया विशाल मार्ग देने वाला प्रणेता माना जा सकता है, लेकिन वह स्वयं एक महान कवि नहीं कहे जा सकते।

फिर भी कवि के रूप में उनमें जो कमी नज़र आती है, उसे उनके गद्य लेखन ने पूरा किया है। जैसा उन्होंने स्वयं भी उल्लेख किया है। और हमें भी दिखता है कि उन लोगों में गद्य लेखन विकसित ही हो रहा था। इससे पूर्व जो कुछ गद्य लिखा गया था, वह साहित्य की दृष्टि से काफी फीका और अधूरा-सा था। इसलिए इसमें कोई दो राय नहीं कि गद्य लेखकों में नर्मदाशंकर का नाम पहले स्थान पर आता है। और वह भी सिर्फ प्रणेता के रूप में नहीं, वरन उसे एक शक्तिशाली माध्यम बनाने के लिए। १८५० में १७ वर्ष की उम्र में, जब उन्होंने 'संगठन स्थापित करने के लाभ' पर पहला व्याख्यान दिया था, से लेकर १८८६ में मृत्यु होने तक, जब उनकी अंतिम पुस्तक 'धर्म-विचार' आई थी, उन्होंने गद्य शैली का उपयोग बहुत शक्तिशाली और अधिकारपूर्ण ढँग से किया।

यह माध्यम भी जिसमें उन्होंने कार्य किया, उस समय लड़खड़ा रहा था। उन्होंने समाज सुधार के सम्बन्ध में बहुत तीखे और कड़े लेख लिखे जबकि इससे पूर्व गद्य लेखन शैली का उपयोग पत्र आदि लिखने के लिए होता था। उन्होंने

अकेले एक विशाल 'कोश' तैयार कर दिया, जिस पर कोई भी व्यक्ति गौरव कर सकता है। उन्होंने धर्म सम्बन्धी विचारपूर्ण लेख लिखे और जिन से काफी विवाद भी पैदा हुए, लेकिन १८५०-५५ में वह गद्य लेखन भी कच्चा नहीं था। वह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने अपनी भाषा में आत्मकथा लिखी। यद्यपि यह टुकड़े में और अधूरी है, लेकिन फिर भी गुजराती भाषा में अब तक प्रकाशित श्रेष्ठ आत्मकथाओं में से एक है। यह सिर्फ नर्मदाशंकर का अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए ही नहीं, बल्कि अन्य लोगों के लिए भी अच्छे सरल और प्रभावशील गद्य के रूप में पठनीय है। इसके अलावा भी गद्य रूप में उन्होंने कई अच्छी चीजें लिखी हैं। किसी ऐसे गद्य का उल्लेख करते समय एक गायिका स्त्री का जो वर्णन उन्होंने गद्य और पद्य दोनों में किया है, को याद किया जा सकता है। पद्य में तो ठीक है, लेकिन गद्य में उस वर्णन को के० एम० मुंशी जैसे लोग भी श्रेष्ठ मानते हैं। इस गद्य को हूबहू लिखने की इच्छा होती है, लेकिन अनुवाद में उसकी सुन्दरता नष्ट हो जाएगी और पाठकों के मन में भावनगर की गरीब गायिका महिला की जो सुन्दर तस्वीर बनी हुई है, उससे टूट जाएगी। उनके गद्य के कई हिस्से आज भी इतने प्रेरक और स्तुत्य हैं कि सरदार वल्लभ भाई पटेल के भाषणों में भी उनके उद्धरण मिलते हैं।

यह भी सच है कि उनके गद्य लेखन से कहीं-कहीं वही गन्दापन, अशिष्टता और घटियापन भी है, जो उनकी कविता में है और ये बातें उनके व्यक्तित्व के साथ जुड़ी हुई थीं तथा यह भी मानना होगा कि उनका गद्य लेखन साहित्य के बजाय पत्रकारिता के रूप में अधिक था, तब भी इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि उन्होंने गद्य साहित्य को जीवन दिया था। यहाँ तक कि प्रतिष्ठित विद्वान श्री जे० ई० झाँझन, जो नर्मदाशंकर के व्यक्ति और लेखन रूप, दोनों के ही कट्टर आलोचक रहे हैं, को कहना पड़ा था कि 'नर्मद को गुजराती गद्य के पहले महान लेखक और पूर्णता होने का गौरव प्राप्त है।'

इस गद्य और पद्य लेखन के अलावा नर्मद ने शोधकर्ता के रूप में भी बहुत कुछ नया और महत्वपूर्ण कार्य किया। जब उन्होंने देखा कि देशी मानदण्ड में कोई छन्द शास्त्र उपलब्ध नहीं है, तो वह पहले व्यक्ति हुए जिन्होंने पिंगल शास्त्र पर एक पूरी पुस्तक तैयार कर दी। इस पुस्तक को तैयार करने में उन्हें कितनी अधिक कठिनाई हुई, इसका उल्लेख तो पहले किया जा चुका है, लेकिन यहाँ यह अवश्य कहना होगा कि वह उनके ज्ञान प्राप्ति के प्रति रहे लगाव का प्रतीक है। और एक चीज़ दूसरे से जुड़ी हुई है। पिंगल पर यह पुस्तक तैयार करने के बाद वह **रस प्रवेश, नायिका प्रवेश, अलंकार प्रवेश** जैसी पुस्तकें एक के बाद एक लिखते और प्रकाशित करते रहे। जैसा हम जानते हैं इन पुस्तकों को लिखने के लिए उन्होंने सीमित साधनों के बावजूद बहुत खोज और यात्राएँ कीं। स्वाभाविक रूप

से गुजराती भाषा में अपने ढँग की ये पहली पुस्तकें थीं। उन्होंने 'व्याकरण प्रवेश' नाम से एक पुस्तक व्याकरण पर भी लिखी।

शोधकर्ताओं के लिए इन पुस्तकों का जो भी महत्व हो, उस व्यक्ति की क्षमता तथा कविता साहित्य और संस्कृति के लिए उसके अगाध लगाव पर तो हमें आश्चर्य ही होगा।

शोध के अलावा नर्मदाशंकर ने अन्य क्षेत्रों में इतना अधिक कार्य किया है कि शोधकार्य तो उल्लेख करने मात्र के लिए काफी है लेकिन यह नहीं भुलाया जाना चाहिए कि इस क्षेत्र में भी उन्होंने इतना काम नहीं किया होता तो बाद में शोध करने वालों को और अधिक मुश्किल हो जाती और हम जानते हैं कि इसके लिए सक्षम होने हेतु उन्होंने कड़ी मेहनत की। वह किसी भी तरह संस्कृत के विद्वान नहीं थे। लेकिन यदि उसमें उनकी योग्यता नहीं होती, तो वह भंडारकर जैसे लोगों के मित्र नहीं हो सकते थे। फिर इतना बड़ा काम एक अकेला व्यक्ति नहीं कर सकता। इसलिए हम चाहे उन्हें इस क्षेत्र का विद्वान न भी कहें। लेकिन हमें उन्हें इस बात का श्रेय तो देना ही होगा कि उनके जैसी मेहनत और कोई साधारण व्यक्ति नहीं कर सकता था। जब उनमें काव्य सरिता सूख रही थी, वह चुपचाप नहीं बैठ गए, वरन उन्होंने प्राचीन और आधुनिक विश्व का इतिहास लिख डाला। उन्होंने स्वयं कहीं उल्लेख किया है कि इस कार्य के लिए उन्हें २०० से अधिक पुस्तकें पढ़नी पढ़ीं, लेकिन हम अनुमान लगा सकते हैं कि उन्हें इसके अलावा भी बहुत कुछ पढ़ना पढ़ा होगा। क्योंकि गहराई में जाए बगैर कोई व्यक्ति उतना अच्छा लिख ही नहीं सकता। उन्होंने महान पुरुषों की जीवनियाँ लिखीं और इस काम के लिए भी काफी अध्ययन की आवश्यकता थी। इससे साहित्य और संस्कृति के प्रति उनकी निष्ठा को आसानी से समझा जा सकता है और विशेष रूप से उस सारे समय में उनके कार्य के लिए जो कठिनाइयाँ थीं, उन्हें देखते हुए उनका महत्व और बढ़ जाता है।

और यह भी अन्त नहीं था। १८७० में 'महापुरुषों की जीवनियाँ' पुस्तक प्रकाशित करने के अलावा उन्होंने रामायण, महाभारत और इतिहास की कथाओं पर भी पुस्तकें प्रकाशित कीं। जैसा हम जानते हैं, इन महाकाव्यों को गहराई से पढ़ना ही बहुत बड़ा काम है और बहुत कम लोग उस सब को पढ़ने की जहमत उठा सकते थे। लेकिन इस व्यक्ति ने न केवल उन्हें पढ़ा, बल्कि उतना गहराई से अध्ययन किया जिससे वह इन तीनों महाकाव्यों का सार तीन अलग-अलग पुस्तकों में लिख सके।

इस सब के बाद भी नर्मदाशंकर द्वारा साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों के लिए किये गए काम की पूरी गणना नहीं होती। उन्होंने गद्य और पद्य लिखा, इतिहास और आत्मकथा लिखी, और सौन्दर्य शास्त्र लिखा, व्याकरण की गुत्थियों को सुलझाया

और शोध किया तथा पुराने लेखकों की पुस्तकों को सम्पादित किया।

हम पहले उल्लेख कर चुके हैं कि नर्मदाशंकर ने दयाराम की कविताओं का संग्रह सम्पादित और प्रकाशित किया। अपनी विभिन्न यात्राओं के दौरान वह एक बार नर्मदा के किनारे बसे एक छोटे से सुन्दर स्थान दभोई गए। दयाराम इसी शहर के निवासी थे। वहाँ नर्मदाशंकर ने उनके जीवन और लेखन सम्बन्धी अनेक तथ्य इकट्ठे करने के प्रयास किए। उन्होंने वह चित्र देखने का प्रयास भी किया, जिससे उन्हें पहचाना जाता हो। इस सब के बारे में उनका पत्र-व्यवहार भी काफी रोचक है। दयाराम की कविताओं का सम्पादन करने के अलावा नर्मदाशंकर ने कवि प्रेमानन्द की प्रसिद्ध लम्बी कविता 'नालाख्यान' भी सम्पादित और प्रकाशित की। यों प्रेमानन्द गुजराती भाषा के महानतम कवियों में से माने जाते हैं और नर्मदाशंकर स्वयं को महान कवि मानते थे। फिर भी इसके बावजूद उन्होंने प्रेमानन्द की श्रेष्ठ रचना को स्वीकारने में हिचक नहीं की और सशक्त तथा प्रभावशाली कविता को प्रकाशित किया।

नर्मदाशंकर का शोधकार्य परिचित और प्रसिद्ध लेखकों की रचनाएँ सम्पादित और प्रकाशित करने तक ही सीमित नहीं था। वह नागर समाज के थे। इस समाज में बहुत सुन्दर स्त्रियाँ तो थी हीं वे बहुत अच्छा गाती भी थीं। वास्तव में नागर परिवार में गायन बच्चे के विकास का एक हिस्से जैसा था। नर्मदाशंकर ने नागर स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले गीतों का अध्ययन किया और बाकायदा विभाजित कर उन्हें प्रकाशित किया। यह काम भी उन्होंने १८७० में किया। इस काम के लिए उन्होंने अपनी पत्नी तथा अन्य परिचित महिलाओं का सहयोग लिया क्योंकि कोई भी स्त्री किसी अन्य पुरुष के सामने अपना गीत नहीं सुनाती थी। तब भी अनेक स्त्रियों ने इस काम में सहयोग नहीं दिया, लेकिन यह काम पूरा हुआ और पुस्तक निकली।

जिस तरह नागर समाज की स्त्रियाँ अनेक सौन्दर्य और गीतों के लिए प्रसिद्ध थीं, उसी तरह काठियावाड़ सौराष्ट्र के लोग आज तक उनके साहस तथा लोक-साहित्य के लिए प्रसिद्ध हैं। नर्मदाशंकर ने इस लोक-साहित्य की सामग्री इकट्ठा करने की कोशिश की। उनके पत्र-व्यवहार से इस प्रयास की जानकारी मिलती है, लेकिन उनके इस प्रयास के अधिक सफल न होने से इस बारे में वह कोई पुस्तक नहीं निकाल सके। लेकिन तब भी वह रुके नहीं। वह लोक-साहित्य के सम्बन्ध में पुस्तक नहीं निकाल पाए, तब भी उन्होंने इसके अध्ययन को अधूरा नहीं छोड़ा। इसका नतीजा यह हुआ कि इस क्षेत्र के सम्बन्ध में एक विस्तृत सन्दर्भ में पुस्तक के रूप में उन्होंने 'काठियावाड़ सर्व संग्रह' नाम से एक पुस्तक निकाल दी।

नर्मदाशंकर की रुचि इस बात का अध्ययन करने में भी थी कि भाषा कैसे लिखी जाती है—भाषाई दृष्टि से नहीं, वरन शाब्दिक रूपों से। उनके इस प्रयास

की गुजराती के पहले भाषाविद नरसिंह राव दिवेतिया ने भी स्वीकारा है।

लेखक नर्मदाशंकर साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में रुचि ही नहीं रखते थे,उनमें पूरी तरह सक्रिय भी रहते थे। उनके व्यक्तिगत जीवन के अनेक दबावों और तनावों तथा किसी नौकरी से धन न कमाने की प्रतिज्ञा के बावजूद उन्होंने किसी क्षेत्र को अछूता नहीं छोड़ा। इसलिए सभी क्षेत्रों में समान रूप से सफल न होने के बावजूद आज तक उनकी भाषा के लोग उनकी सेवाओं के प्रति कृतज्ञता प्रगट करते हैं।

११

यदि अब हम नर्मदाशंकर के लेखक रूप से हटकर व्यक्ति के रूप पर नजर डालें, तो हमें लगता है कि यदि यह रूप भी महानतम न हो, महान अवश्य है। हाँ, निश्चित रूप से लेखक के बजाय वह एक महान व्यक्ति थे। उनके महान और साहसी होने की स्पष्ट झलक उनके बचपन में नहीं मिलती थी। जैसा उन्होंने स्वयं कहा है कि उन दिनों में वह बहुत शर्मीले और डरपोक थे और अनेक देवी-देवताओं के नाम से बहुत आतंकित रहते थे। इसलिए उनके बाद के जीवन में अतिस्पष्टवादी और साहसिक व्यक्तित्व को देखकर कुछ आश्चर्य होता है। इसलिए युवा होने पर उनके नास्तिक होने पर भी आश्चर्य होगा। लेकिन आधुनिक मनोविज्ञान इस परिवर्तन की मनोवृत्ति के कारणों को स्पष्ट कर सकता है। इसी तरह जीवन के अंतिम भाग में भी उनमें आए परिवर्तन को भी मनोवैज्ञानिक ही स्पष्ट कर सकते हैं।

इस सब को अलग रखकर विरोधाभास के बावजूद हम यह बात निश्चित रूप से कह सकते हैं कि वह बहुत साहसी व्यक्ति थे और उनका व्यक्तित्व काफी प्रभावशाली और प्रशंसाजनक भी था। यह बात उनकी अनेक कमजोरियों की ओर आँखें बन्द न करने के बावजूद कही जा सकती है।

हाँ, उनकी कमजोरियाँ थीं और वे भी छोटी नहीं। वह बहुत अभिमानी और आवेगी व्यक्ति थे। वह समुचित कारणों के बिना ही दूसरों को बुरा और आक्रमणकारी समझ लेते थे और बदले में हमला कर देते थे। गुजराती के पहले श्रेष्ठ उपन्यास 'करन घेलो' के लेखक नन्दशंकर के साथ हुआ कटु पत्र-व्यवहार इसके प्रमाण के लिए उपस्थित है, जिसमें उन्होंने नन्दशंकर द्वारा अन्याय करने का आरोप लगाते हुए उन्हें एक गन्दा हरामी फरसा तक कह दिया था। इस तरह की कटुता और आरोपबाजी की झलक अनेक अन्य लोगों के साथ हुए पत्र-व्यवहार

में भी देखने को मिलती है। जब भावनगर में उनके मित्र उनकी आर्थिक सहायता की कोशिश कर रहे थे और उन्हें किसी तरह की चोट नहीं पहुँचा रहे थे, नर्मदाशंकर ने उनकी दयालुता के विरुद्ध लेख लिखे और तब भी उनके मित्र श्री हरिप्रसाद संतोकराम देसाई की प्रशंसा की जानी चाहिए, जिन्होंने उन्हें दानकर्ता का नाम बताए बगैर गुप्त रूप से एक हज़ार रुपए दिये थे। पाठकों को याद होगा, इस घटना का उल्लेख पूर्व के अध्याय में किया गया है। एक व्यक्ति को उन्होंने कुछ दिन बाद आने को कहा था। फिर उसके आने से पहले, एक दिन जब वह कुछ मित्रों के साथ चर्चा कर रहे थे, पोस्टमैन ने आकर एक हज़ार रुपये वाला एक लिफ़ाफ़ा उन्हें दिया था। इन रुपयों के साथ लगी पर्ची में लिखा था—'आपके घनिष्ट मित्र और प्रशंसक की ओर से।' वह मित्र तथा प्रशंसक और कोई नहीं भावनगर के श्री हरिप्रसाद सन्तोकराम देसाई ही थे। जो उस समय भी वहाँ बैठे हुए थे और किसी को इसकी भनक दिए बगैर पूरे दृश्य का आनन्द ले रहे थे और इसके बावजूद नर्मदाशंकर ने इस उदार और प्रशंसक मित्र पर अकारण आरोप लगाए और उन्हें कष्ट पहुँचाया।

नर्मदाशंकर का असहनशील और ईर्ष्यालु स्वभाव, सहृदय और शांत कवि दलपतराम के साथ रहे उनके सम्बन्ध में देखने को मिलता है। नर्मदाशंकर को सदैव यह शंका रहती थी कि यह बुजुर्ग व्यक्ति उनके विरुद्ध चालें चलता रहता है और उनके प्रभाव तथा उपलब्धियों को कम करने की कोशिश कर रहा है। इसमें कुछ सच्चाई भी हो सकती थी लेकिन नर्मदाशंकर बुजुर्ग के बारे में यह सोचकर स्वयं के साथ अन्याय कर रहे थे। इन दोनों व्यक्तियों, जिनका गुजराती भाषा के साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान था और जो एक पूरे युग के प्रवर्तक थे, के लिए यह एक दुःखद अध्याय था। जिस काल में उन्होंने कार्य किया, उसे गुजरात के लोग 'नर्मद-दलपत युग' के नाम से जानते हैं। लेकिन असहनशील ईर्ष्या की घटनाएँ कला और साहित्य के इतिहास में नई नहीं हैं। यह एक दुःखद बात है, लेकिन सम्पूर्ण मानव जाति इस तरह की कमज़ोरियों से भरी होती है और ये दोनों लोग भी इसके अपवाद नहीं थे।

दलपतराम जैसे बुजुर्ग और प्रभावशाली प्रतिद्वन्द्वी के लिए नर्मदाशंकर की ईर्ष्या समझ में आ सकती है और माफ की जा सकती है। लेकिन वह तो अपने घनिष्ट मित्र कृष्णदास मुलजी तक से ईर्ष्या करते थे, जिनके साथ उन्होंने स्वयं समाज सुधार की लड़ाई लड़ी थी। जब कृष्णदास मुलजी ने वह प्रसिद्ध 'महाराज मान-हानि प्रकरण' जीता, तो नर्मदाशंकर बहुत प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने यह अनुभव किया और लिखा भी कि कृष्णदास ने उतनी ख्याति लूट ली, जिसके वह योग्य नहीं थे। अप्रत्यक्ष रूप से इसका मतलब यही था कि वास्तव में यह ख्याति और श्रेय उन्हें यानी नर्मदाशंकर को मिलना चाहिए, लेकिन नहीं मिल सका,

क्योंकि...खैर, हम समझ सकते हैं।

इन कमज़ोरियों के अतिरिक्त उनकी एक और भी कमज़ोरी थी। यह थी नर्मदाशंकर की महिलाओं के प्रति बनी कमज़ोरी। महिलाओं के साथ सम्बन्धों में उन्हें नैतिक हिचक भी बहुत कम थी और स्त्री-पुरुषों की समानता के लिए उनकी लड़ाई के बावजूद घर में एक और पत्नी लाने के प्रश्न पर पहली पत्नी दाहीगौरी के साथ हुए वार्तालाप से उनके पति और पुरुष होने सम्बन्धी अहम की झलक मिलती है। इस वार्तालाप से उनकी तस्वीर पुराने विचारों वाले हिन्दू पति जैसी ही बनती है। यह उनकी पत्नी दाहीगौरी की ही उदारता और महानता थी जिसने इस व्यवहार के बावजूद घर में दूसरी स्त्री आने दी।

इस सूची में अनेक और कमज़ोरियाँ भी जोड़ी जा सकती हैं, जो छोटी नहीं होगी। लेकिन इस सबके बावजूद नर्मदाशंकर का व्यक्तित्व तब भी महान था।

महानता के अनेक गुण होते हैं और बहादुरी उसमें से एक नहीं होती। हाँ, बहादुरी और साहस ज़रूर जुड़ी हुई बातें हैं, जो नर्मदाशंकर के प्रतिद्वन्द्वियों से टकराते समय दिखती हैं। यह गुण उनके प्रारम्भिक जीवन में जुड़े शर्मीले और भीरु स्वभाव के बावजूद बन गये थे। ये कमजोरियाँ बहुत जल्दी समाप्त हो गई थीं और इसी कारण १७ वर्ष की उम्र में वह एक संस्था की स्थापना कर उसके अध्यक्ष बन गए और एक व्याख्यान भी दिया, जो उनकी भाषा में पहला गद्य लेखक माना जाता है। इसके लिए निश्चित रूप से शारीरिक साहस की आवश्यकता नहीं थी, लेकिन यहाँ जो नैतिक शक्ति और विश्वास उन्होंने दिखाया, वह जीवन भर बना रहा। इसी तरह अपने लोगों में ही पहले सुधार को लेकर अपनी जाति के लोगों से हुआ उनका द्वन्द्व भी कम साहसिक काम नहीं था। मैंने इस घटना की चर्चा की है, जब उनकी जाति के सामूहिक भोज में स्त्रियों के एक समूह को उन्होंने चोलियाँ पहनवाकर भेजा था। लेकिन कुछ लोग कह सकते हैं कि इसके लिए धृष्टता या निर्लज्जता की आवश्यकता अधिक थी 'साहस' की नहीं।

यदि इसे धृष्टता कहकर अधिक साहसिक नहीं कहेंगे, तो वैष्णव सम्प्रदाय को लेकर जदुनाथजी महाराज से हुई संघर्ष को क्या कहेंगे। उसके लिए बहुत अधिक साहस की आवश्यकता थी। वह जानते थे कि इसमें उनकी जान को भी खतरा होगा। वह यह भी जानते थे कि समाज सुधार आन्दोलन के उनके मित्र भी इस कार्यवाही का समर्थन नहीं करेंगे। तब भी वह अकेले सभा में गए और नाममात्र के लिए उनके साथ पहुँचे बहादुर मित्र किशनदास बाबा को भी उन्होंने खतरा देखकर अपने पिता के साथ वापस भेज दिया था। वह जानते थे कि गड़बड़ी होने पर सबसे पहले उनके पिता को खतरा होगा और सिर्फ़ बाबा ही उन्हें इस स्थान से बाहर ले जा सकता है। इस शक्तिशाली व्यक्ति के जाने पर भी वह अपने स्वयं के लिए उत्पन्न खतरे से नहीं घबराए। यदि कोई अन्य उनके साथ

होता, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता।

हम कल्पना कर सकते हैं कि शास्त्रों के ईश्वर द्वारा निर्मित नहीं होने की बात उन्होंने कितनी दृढ़ता तथा साहस से कही होगी, जब सैकड़ों लोगों की उग्र भीड़ उनके सामने थी। वह उस स्थान से सुरक्षित बच निकले, लेकिन वहाँ वह बुरी तरह पिट भी सकते थे। उनका वह कदम उतावलेपन की निशानी कहा जा सकता है, लेकिन यह एक अनूठा साहसिक कदम अवश्य था।

जब उन्होंने विधवा नर्मदागौरी से विवाह का निश्चय किया, तब भी इसी तरह के साहस की आवश्यकता थी। कोई भी उनके इस विवाह की प्रशंसा नहीं करेगा, जबकि पहले से ही उनकी एक पत्नी थी और वह भी एक सुन्दर स्त्री, लेकिन यह स्वीकार करना होगा कि उनका यह निर्णय भी मज़ाक नहीं था। विशेष रूप से उस स्थिति में जब उनकी जातिवालों ने उन्हें जाति के बाहर कर दिया और उनके मित्रों तथा प्रशंसकों ने भी इस कदम को पसन्द नहीं किया। इस आश्चर्यजनक कदम के कारण सामान्यतः लोग उनके विरुद्ध हो गए। उन्होंने यह कहकर अपने मन को संतुष्ट किया कि यदि वह विधवा विवाह की आवाज उठाते रहे हैं और अपने खुद पर यह बात व्यवहार में लाने का प्रश्न आने पर वह कैसे भाग सकते हैं। उन्होंने महसूस किया कि उन परिस्थितियों में विवाह ही सम्मानजनक कदम हो सकता था। इसलिए सारे प्रतिरोधों के बावजूद उन्होंने विवाह किया।

बहादुरी और साहस के अतिरिक्त नर्मदाशंकर में एक और विशेष गुण असाधारण उदारता का था। सच तो यह है कि वह दोषी कहे जाने की हद तक उदार थे। लोगों का कहना था कि वह बहुत फिजूलखर्ची थे और यह सच है कि कई बार उन्होंने अपने साधन और सीमाओं से अधिक खर्च किया तथा वह अपने स्वयं पर भी इतना खर्च करते थे, जितनी उनकी क्षमता नहीं थी। यह स्वीकार किया जा सकता है कि वह उचित नहीं था। लेकिन स्वयं पर उदारता करना कोई उदारता नहीं होती। जब आप दूसरों के प्रति उदार होंगे, तभी उसे विशेषता माना जाएगा। हाँ, नर्मदाशंकर इस तरह की उदारता भी बहुत रखते थे, जिसके प्रमाण में अनेक घटनाएँ हैं। उनके पास अपने घर में सिर्फ़ सात रुपये थे, जब उन्होंने कुछ सोचे-समझे अपने सचिव से एक वृद्ध व्यक्ति को एक सौ रुपए देने को कह दिया था। यह तो ठीक है, लेकिन जिस क्षण उनके पास कुछ धन आया, नर्मदाशंकर ने सबसे पहले उस व्यक्ति के लिए एक सौ रुपए निकालकर अलग रखने का आदेश दिया, जबकि उन दिनों में सौ रुपए बहुत बड़ी रकम हुआ करती थी और फिर उनकी स्वयं की आर्थिक स्थिति भी खराब थी। यह बात भी नहीं कि उस समय वह अपनी हालत नहीं जानते थे, लेकिन उनका उदार दिल इसके अलावा और कुछ करने को नहीं कह सकता था। शायद इसलिए कठिन आर्थिक

परिस्थिति में वह इच्छापूर्वक शांति से इस स्थिति का मुकाबला कर सके। संघर्षमय परिस्थिति और जीवन के प्रति इस तरह का दृष्टिकोण रखने वाला व्यक्ति ही, जब घर में सिर्फ़ चार आने बचे हों, तब उबले हुए चावल लाने का आग्रह करके मुस्कराते हुए कह सकता है—'यह भी जीवन का एक अंग है।'

इस सम्बन्ध में कवि के घर में प्रारम्भिक जीवन बिताने वाले राजाराम शास्त्री द्वारा बताई गई घटना उल्लेखनीय है। उन्होंने इस घटना का उल्लेख कवि के अंतिम दिनों सम्बन्धी एक लेख में किया है। मृत्यु से कुछ दिनों पहले नर्मदाशंकर के एक मित्र खापर्डे, कवि द्वारा बम्बई सरकार के गजेटियर के लिए किए गए कुछ कार्य का पारिश्रमिक लेकर आए। इस राशि के अलावा सूरत के अपने मकान को बेचने से मिली राशि को लेकर, नर्मदाशंकर ने उसका कुछ हिस्सा बम्बई के दो गरीब छात्रों की सहायता के लिए दे दिया और कुछ राशि प्रभुराम मेहता से लिटे गए ऋण को चुकाने के लिए दे दिया। इस तरह ऋण-मुक्त होने के बाद ही उन्होंने विश्राम किया और बाद में शांतिपूर्वक चिरनिद्रा में सो गए। केवल उदार और बहुत बड़े दिल वाला व्यक्ति ही उस कठिन आर्थिक संकट के समय यह काम कर सकता था।

अंतिम दिनों में लिखी गई पुस्तक 'धर्म विचार' में व्यक्त किए गए समाज सुधार और धर्म के सम्बन्ध में उनके बदले हुए विचार और परिवर्तित चेहरे की बहुत आलोचना हुई है। उन्होंने अपने इस नए दृष्टिकोण को छिपाया नहीं और न ही उन्होंने उसे दबाने का प्रयास किया। इसके बिल्कुल विपरीत उन्होंने स्वयं अपने बदले हुए विश्वास और दृष्टिकोण की स्पष्ट घोषणा की। मैं समझता हूँ कि इस घोषणा को उनके जीवन की सबसे बड़ी साहसिक बात समझी जानी चाहिए।

आइए देखें कि यह परिवर्तन क्यों हुआ? वैष्णव महाराज वाले मामले को लेकर समाज सुधार के काम में साथ दे रहे मित्रों के भाग जाने से नर्मदाशंकर के मन में उनके प्रति निराशा सी हो गई। समय के साथ-साथ यह निराशा और वितृष्णा घटने के बजाय बढ़ने लगी। निराशा के उन्हीं क्षणों में उन्होंने देख लिया कि उन मित्रों में से अधिकांश कुछ करने के बजाए बस बातें ही बना सकते हैं और जब साहस तथा बलिदान की आवश्यकता थी, अधिकांश ने अपनी जान छुड़ा ली थी। इन बातों से उनके अपने जीवन में निराशा और निरुत्साह पैदा हुआ, जिसके बारे में उन्होंने जीवन के अंतिम वर्षों में विचार किया। फिर उन्हें यह लगा कि सिर्फ़ उनके पुराने मित्र ही गलत नहीं थे, वरन उस समय के उनके अपने विचारों में भी दोष थे। इससे उनके अन्दर पुनर्विचार की प्रक्रिया शुरू हो गई। पुनर्विचार की इसी प्रक्रिया के दौरान वह पूरी तरह पीछे मुड़ते चले गए और उन्होंने अपने पिछले विचारों को भी छोड़ दिया और उन्हीं विचारों को स्वीकार किया, जिनके विरुद्ध वह निरन्तर संघर्ष करते रहे थे। जब उन्होंने सोचा कि विधवा स्त्री का

पुनर्विवाह नहीं होना चाहिए। स्त्री का सबसे बड़ा कर्तव्य सिर्फ उसी पुरुष के प्रति निष्ठावान रहना है, जिसके साथ उसका विवाह हुआ है, फिर चाहे वह पुरुष किसी भी तरह का हो। उन्हें लगा कि सनातन हिन्दू धर्म शास्त्रों की यही बात सर्वाधिक उचित है। इस तरह जिन सामाजिक और धार्मिक विचारों में परिवर्तन की बात वह जीवन भर करते रहे, उन्होंने उसी को उचित करार दिया। उन्हें यह विश्वास भी हो गया कि हिन्दू को शास्त्रों द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार ही खान-पान रखना चाहिए और जिस तरह पहले वह स्वयं उसमें ढील की बात करते थे, वह ठीक नहीं है।

नर्मदाशंकर ने जब ये निष्कर्ष निकाल लिये और उन्हें विश्वास हो गया कि यही सच्चाई है, तो वह चुप नहीं बैठे और बाकायदा शास्त्र सम्मत उन विचारों के समर्थन की घोषणा की। यह कार्य भी उन्होंने उसी तेज़ी से किया और कहीं कोई अनिश्चितता नहीं दिखाई। लोगों को इस बदले हुए रूप पर चिढ़ हुई। कई लोगों ने मज़ाक किया। कई ने भर्त्सना की। लेकिन नर्मदाशंकर अब भी उसी तरह दृढ़ रहे, जिस तरह वह पहले इन विचारों का विरोध करते समय दृढ़ थे। और वह अन्त तक अपनी बात पर अड़े रहे।

कुछ लोगों की यह बात ठीक नहीं लगती कि जनता का रुख समाज सुधार वाले विचारों के प्रति पुनः बदल गया था और इससे लोकप्रियता की दृष्टि से नर्मदाशंकर ने अपने विचार बदल दिए। यह सच है कि सुधार के पहले जैसे उत्साह और आवेगी आन्दोलन की जगह कुछ उदार विचारों और शांतिपूर्ण दृष्टिकोण ने ले ली थी, लेकिन सुधारवादी विचार पूरी तरह समाप्त भी न हुए। ये अच्छे ढँग से नियोजित हो रहे थे और उन्हें बम्बई के नए विश्वविद्यालय से निकले शिक्षित लोग सही ढँग से सामने रख रहे थे। बम्बई विश्वविद्यालय के ये पहले स्नातक युवा साहित्य और सामाजिक जीवन में प्रवेश कर ही रहे थे। युवक नरसिंह राव दिवेनिया विधवाओं के कष्टप्रद जीवन पर उसी पैनेपन से कविताएँ लिख रहे थे, जिस ढँग से कभी नर्मदाशंकर लिखा करते थे, लेकिन नरसिंह राव उनसे अधिक अच्छे ढँग और अधिकारपूर्वक यह काम कर रहे थे। गोवर्धन दास त्रिपाठी अपनी महान कृति 'सरस्वती चन्द्र' तैयार करने में जुटे हुए थे, जो किसी भी तरह रूढ़िवादी की पुराण नहीं कही जा सकती। सुप्रसिद्ध कवि, विद्वान और विचारक मणिलाल नाथुभाई, यद्यपि अपने विचारों से रूढ़िवादी थे, लेकिन अन्य लोगों की तरह कट्टर नहीं। और यह तो नए लोग थे, जिनकी चर्चा की गई। नर्मदाशंकर के घनिष्ट मित्र सुप्रसिद्ध आलोचक नवलराम बाल-विवाह प्रथा के विरुद्ध सशक्त कविता लिख चुके थे। समाज सुधार के इस जागरूक वातावरण में नर्मदाशंकर जैसे व्यक्ति का यह साहस कम नहीं था, जो खुलेआम अपने परिवर्तन की घोषका कर सका। सही या गलत, निश्चित रूप से नितान्त गलत होते हुए

भी अपने विश्वास और आस्थाओं के प्रति निष्ठा तथा साहस लिते व्यक्ति के रूप में नर्मदाशंकर सम्मान के योग्य है।

अनेक लोगों, जिनमें बड़े-बड़े विद्वान भी शामिल हैं, ने कई बार नर्मदाशंकर के बदले हुए रूप के मनोवैज्ञानिक और अन्य कारणों पर कई बार आश्चर्य व्यक्त किया है। जैसा कि दुर्भाग्यवश कवि के जीवन के अंतिम वर्षों का सम्पूर्ण प्रामाणिक ब्यौरा उपलब्ध नहीं है, कोई भी असली तथ्यों एवं वास्तविक कारणों को नहीं खोज सकता, लेकिन इस बड़े परिवर्तन के लिए मानवीय स्वभाव और आवेगी प्रवृत्ति ही प्रमुख कारण प्रतीत होता है। जैसा हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, बचपन के दिनों में वह बहुत धार्मिक और अन्धविश्वासी थे और बाद में अँग्रेजी शिक्षा पाने तथा बम्बई के जागरूक लोगों की मित्रता के कारण उन्होंने उन धार्मिक विचारों को पूरी तरह त्याग दिया था। लेकिन बाद के जीवन में पलड़ा फिर बदल गया। इसके अनेक कारण थे। इनमें प्रमुख यही लगता है कि उन्हें अपने पुराने मित्रों के कथनी और करनी में अन्तर वाली प्रवृत्ति से निराशा भी हुई थी। एक कारण यह भी लगता है कि उन सारे वर्षों के दौरान उन्हें दुनिया के पर्याप्त अनुभव हुए और उनके दृष्टिकोण तथा निष्कर्ष परिपक्व हुए। उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन के पीछे उनका धार्मिक और इतिहास तथा भारतीय शस्त्रों का गहराई से अध्ययन एवं अपने स्वयं के लिए विचारने के स्वभाव का भी बहुत योगदान रहा। जब वह इस नए दृष्टिकोण से प्रभावित हुए और उन्होंने अपना पुराना मत बदला, तब उन्होंने जिस शक्ति और उत्साह से अपने बदले हुए विचारों का प्रतिपादन किया, उनका समकालीन कोई और व्यक्ति नहीं कर सकता था। जो लोग जटिल मानवीय स्वभाव का हल सरलता से निकालना चाहते हैं, उन्हें अवश्य परेशानी लगती हो, लेकिन मानव मन का अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए नर्मदाशंकर के इस परिवर्तन के मानसिक कारणों को समझने में कठिनाई नहीं हो सकती।

जैसा कि अब तक हो चुका है, कि अनेक सीमाओं के बावजूद नर्मदाशंकर एक दूरदृष्टि वाले व्यक्ति थे और उनकी दृष्टि सिर्फ़ सामाजिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं थी। यों उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से राजनीति में हिस्सा नहीं लिया, लेकिन यह उनकी दूरदृष्टि ही थी कि अन्य लोगों की तरह ब्रिटिश राज से सामाजिक क्षेत्र में जागृति के लाभ की प्रशंसा करने के साथ-साथ सिर्फ़ उन्होंने उन प्रारंभिक दिनों में ही इस बात पर जोर दिया था कि केवल सामाजिक परिवर्तन से ही नहीं सम्पूर्ण आज़ादी के बगैर भारत की पूरी तरह उन्नति नहीं हो सकेगी। इस संबंध में वह जो अनुभव करते थे, उसे स्पष्ट करने का साहस भी उनमें था। इस प्रश्न पर वह जो सोचते थे, वह उनके लेखन में देखा जा सकता है। इसी राष्ट्रभक्ति की भावना के कारण ही, गुजराती भाषा में वह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने

'स्वदेशाभिमान' शब्द का प्रयोग किया। उनके कालेज के प्राध्यापक और भारतीय स्वतन्त्रता सेनानी दादा भाई नौरोजी द्वारा कलकत्ता में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में उपयोग करने से २० वर्ष पहले नर्मदाशंकर ने 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग कर दिया था। इसी तरह महात्मा गांधी के राजनीति में प्रवेश करने से पहले ही इस दूरदृष्टा ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की आवश्यकता निरूपित की थी। उन्होंने राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत सशक्त कविता 'हिन्दुओनी पड़ती' (हिन्दुओं का पतन) लिखी थी। यों नाम से यह कविता हिन्दुओं के पतन के बारे में लगती है, लेकिन ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि 'हिन्दू' शब्द से उनका मतलब एक समाज विशेष से नहीं, वरन सारे भारत के लोगों से था।

उनकी लेखनी में अनेक बार 'हिन्दू' शब्द का उपयोग होने के कारण उन्हें हिन्दू सम्प्रदायवादी कहे जाने की कोशिश की गई है, लेकिन यह आरोप सही नहीं लगता। एक प्रसिद्ध विद्वान श्री जे० ई० सार्जन ने नर्मदाशंकर के इस तरह के लेखन पर काफी कुछ टिप्पणी की है। मेरे विचार से, वही एक मात्र व्यक्ति थे, जिन्होंने उन्हें ठीक से नहीं समझा और नर्मदाशंकर ने जिस वातावरण में रह कर इस शब्दावली का उपयोग किया, नहीं समझ पाए। बहरहाल सौभाग्यवश अन्य किसी आलोचक ने नर्मदाशंकर पर साम्प्रदायिक होने का आरोप नहीं लगाया है।

यदि हम इस व्यक्ति और लेखक की कमियों को क्षण भर के लिए अलग रख दें, तो दो बातें बिल्कुल स्पष्ट रूप से सामने आती हैं कि उनमें काम के प्रति अपूर्व निष्ठा और लगन थी। इस व्यक्ति के जीवन का अध्ययन समाप्त करते समय हम महान फ्रेंच चित्रकार तूलूस लात्रे की वह बात याद कर सकते हैं, जो उसने मृत्यु शैया पर अपनी माँ से कही थी—'माँ, मैं पतित था, शराबी था, लेकिन मैंने चित्रकारी खूब की है।' नर्मदाशंकर के सम्बन्ध में भी हम सचमुच यह कह सकते हैं कि वह भी पतित थे, शराबी भी थे, लेकिन उन्होंने जीवन के अंतिम क्षणों तक खूब काम किया, कड़ी मेहनत की, ताकि उनकी भाषा तथा साहित्य समृद्ध बने और समाज तथा राष्ट्र सुखी हो।

इसीलिए उनकी भाषा लिखने और बोलने वाले कृतज्ञ लोगों ने उनके बारे में इतना अधिक कहा और लिखा है। आधुनिक गुजराती साहित्य के चोटी के लेखक श्री के० एम० मुंशी ने नर्मदाशंकर को 'आधुनिक साहित्यकारों में प्रथम' निरूपित किया है। उनकी जीवनी के लेखक और मित्र प्रसिद्ध आलोचक नवलराम ने उन्हें 'अपने युग की जान' माना है। एक अन्य विद्वान विश्वनाथ भट्ट ने उन्हें 'वीर नर्मद' की संज्ञा दी है। एक और विद्वान रामनारायण पाठक ने उनके लेखन के एक पहलू पर पूरी पुस्तक लिख दी है। और इस लेखक ने भी पूर्व प्रकाशित एक ग्रन्थ में उन्हें 'कवि—राष्ट्रभक्त' गद्य लेखन का प्रणेता बताया है। गुजराती साहित्य में पिछले

९० वर्षों के दौरान उन पर अनेकानेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और कोई लेखक ऐसा नहीं रहा है, जिसने किसी न किसी रूप में नर्मदाशंकर की प्रशंसा न की हो। वह स्वयं एक जीती-जागती पुस्तक के रूप में याद किए जाते हैं और उनके बारे में अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं बस एक कवि के शब्दों में यह कहा जा सकता है—वीर नर्मद, तुमने तुम्हारे जीवन की लड़ाई जीत ली। नर्मदाशंकर ने स्वयं अपनी एक कविता जिसमें उन्होंने अपनी मृत्यु की सम्भावना का उल्लेख किया है, कहा था कि 'उनके लिए कोई शोक न किया जाए।'

हमें उनकी इस बात का सम्मान करते हुए इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त करनी चाहिए कि ऐसा महान और प्रेरक व्यक्ति हमारे बीच आया और जिसने भावी पीढ़ी के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया।

१८९६ में नर्मदाशंकर का निधन हो गया। १८८७ में गुजराती साहित्य जगत में दो महत्वपूर्ण घटनाएँ हुईं। इनमें एक गोवर्धनराम त्रिपाठी के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'सरस्वतीचन्द्र' के पहले संस्करण का प्रकाशन था। दूसरा नरसिंहराव दिवेतिया की कविताओं के संग्रह 'कुसुम माला' का प्रकाशन था। पहला गद्य में और दूसरा पद्य में। आधुनिक गुजराती साहित्य को इन दो महत्वपूर्ण पुस्तकों पर गौरव है। नर्मदाशंकर के अनूठे प्रयासों और गद्य पद्य को आधुनिक रूप देने के महत्वपूर्ण कार्य के बगैर क्या इन दोनों लोगों द्वारा इन दो श्रेष्ठ पुस्तकों का लेखन और प्रकाशन सम्भव था? हम यह नहीं जानते, लेकिन इतना अवश्य जानते हैं कि उनके प्रयास व्यर्थ नहीं गए और इसलिए शोक न करने की उनकी बात हम प्रसन्नतापूर्वक स्वीकारते हैं। उनकी इच्छा थी कि उनकी यह पंक्ति पत्थर पर अंकित कर दी जाए। यह पंक्ति पत्थर पर नहीं लिखी गई, लेकिन सदा-सदा के लिए देशवासियों के दिलों पर अंकित हो गई।

नर्मदाशंकर की पुस्तकें

क्र० सं०	प्रकाशन वर्ष	प्रकाशन का नाम
१	१८५०-५१	मंडली मलवथी तथा लाभ
२	१८५६	व्यभिचार निषेधक
३	१८५६	मुवां पछवाड़े रोवा कुटवानी घेलई
४	१८५६	स्वदेशाभिमान
५	१८५६	निराश्रित प्रत्ये श्रीमन्तन धर्म
६	१८५७	पिंगल प्रवेश
७	१८५७	स्त्रीनां धर्म
८	१८५७	गुरु अने स्त्री
९	१८५८	नर्मकविता-१, २
१०	१८५५	अलंकार प्रवेश
११	१८५८	रस-प्रवेश
१२	१८५८	गरीबी विशे भिखारीदासनो संवाद
१३	१८५८	कवि अने कविता
१४	१८५९	सम्प
१५	१८५९	विषयी गुरु
१६	१८५९	गुरुनी सत्ता
१७	१८५९	नर्म कविता-३, ४, ५, ६, ७, ८
१८	१८६०	नर्मकविता-९, १०
१९	१८६०	दयाराम कृत काव्यसंग्रह

२०	१८६०	पुनर्विवाह
२१	१८६०	लग्न तथा पुनर्लग्न
२२	१८६०	भक्ति
२३	१८६०	साकार
२४	१८६०	मनहरपाद (मनोहर स्वामीनन पाद)
२५	१८५९-६३	तुलजी वैधव्य चित्र (वार्तालाप रूप में)
२६	१८६१	नर्म कोश-१
२७	१८६१	ऋतु वर्णन
२८	१८६२	नर्म कविता ग्रंथ-१ (पिछले सात वर्षों की कविताओं का संग्रह)
२९	१८६२	नर्म कोश-२
३०	१८६३	नर्म कविता-२
३१	१८६३	हिन्दुओनी पड़ती
३२	१८६४	नर्म कविता (संम्पूर्ण ग्रंथ)
३३	१८६४	दांडियो (पत्र का प्रकाशन प्रारंभ)
३४	१८६४	नर्म कोश-३
३५	१८६४	रनमान पच्चन पागलान ना करवा विशे
३६	१८६५	नर्मगद्य
३७	१८६५	कवि चरित्र
३८	१८६५	दयाराम कृत काव्यसंग्रह
३९	१८६५	नर्म व्याकरण-पहला संस्करण
४०	१८६५	सुरातनी मुख्तेसर हकीकत
४१	१८६५	नर्म व्याकरण-दूसरा संस्करण—भाग-१
४२	१८६५	नर्म कोश-४
४३	१८६६	नायिका विषय प्रवेश
४४	१८६७	मेवाडनी हकीकत
४५	१८६८	सजीव रोपन
४६	१८६८	स्त्री केलावनी
४७	१८६८-६९	गुजरातियोनी स्थिति
४८	१८६९	केलावनी विशे
४९	१८६९	कुल मोटाप
५०	१८६९	उद्योग तथा वृद्धि

५१	१८६९	सुख
५२	१८७०	रामायणनो सार
५३	१८७०	महाभारतनो सार
५४	१८७०	इलियादनो सार
५५	१८७०	महापुरुषोनां चरित्र
५६	१८७०	नर्म कथाकोश
५७	१८७०	नागर स्त्रियोंमन गावतन गीत
५८	१८७२	नर्म कोश (संपूर्ण)
५९	१८७३	प्रेमानन्द कृत दशमस्कन्ध
६०	१८७४	महादर्शन (जगतना प्राचीन इतिहासनुं समग्र दर्शन)
६१	१८७४	राज्यरंग-१ (जगतनाम प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास)
६२	१८७५	प्रेमानन्द कृत नालाख्यान
६३	१८७६	राम जानकी दर्शन
६४	१८७८	श्री द्रोपदी दर्शन नाटक
६५	१८७८	सीताहरण नाटक (अप्रकाशित)
६६	१८८१	श्री सरशकुन्तल
६७	१८८३	बालकृष्ण विजय नाटक
६८	१८८६	धर्म विचार
६९	१८८९	काठियावाड़ सर्व संग्रह

तारीख के बगैर वाली पुस्तकें

७०	राज्यरंग—दूसरा संस्करण
७१	आर्य दर्शन
७२	कृष्णकुमारी नाटक
७३	श्रीमद्भागवदगीता
७४	गुजरात सर्व संग्रह

७५ देश व्यवहार व्यवस्था
७६ उनकी आत्मकथा **'मेरी हकीकत'** १८६६ में पूरी हो गई थी, लेकिन इसका प्रकाशन उनके शताब्दी वर्ष १९३३ में हुआ।

• •

नर्मदाशंकर लालशंकर दवे (१८३३-१८८६), 'नर्मद' नाम से प्रसिद्ध हैं। उनकी साहित्यिक गतिविधियों ने गुजरात में पद्य और गद्य को रचनात्मक और आलोचनात्मक, दोनों ही दृष्टियों से नई और विविध दिशाएँ प्रदान कीं।

नर्मदाशंकर का जन्म सूरत में हुआ। उनकी प्राथमिक शिक्षा सूरत में और उच्च शिक्षा बम्बई में सम्पन्न हुई। उन्होंने समाज-सुधार के आंदोलन में सक्रियता से हिस्सा लिया। वे 'बुद्धि-वर्द्धक सभा' के संस्थापकों में से एक थे। उन्होंने अपनी साहित्यिक गतिविधियों की शुरुआत समाज-सुधार के लिए सहयोग देने वाले एक माध्यम के रूप में की। बाद में उन्होंने लेखन को अपने प्रमुख व्यवसाय के रूप मे अपनाने का निश्चय किया।

नर्मदाशंकर गुजराती में आधुनिक कविता और गद्य के जनक माने जाते हैं, क्योंकि उनके काव्य और गद्य में पहली बार आधुनिक कविता और आधुनिक गद्य के लगभग सभी लक्षण पर्याप्त मात्रा मे मिलते हैं।

इस पुस्तक में गुजराती के वरिष्ठ लेखक श्री गुलाबदास ब्रोकर ने बहुत ही कुशलता से नर्मदाशंकर के जीवन और साहित्य से संबंधित सभी पहलुओं को छुआ है और गुजराती साहित्य में उनके योगदान का स्पष्ट मूल्यांकन किया है।

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

साहित्य अकादेमी भारतीय-साहित्य के विकास के लिए कार्य करने वाली राष्ट्रीय महत्त्व की स्वायत्त संस्था है, जिसकी स्थापना भारत सरकार ने १९५४ में की थी। इसकी नीतियाँ एक ८२-सदस्यीय परिषद् द्वारा निर्धारित की जाती हैं जिसमें विभिन्न भारतीय भाषाओं, राज्यों और विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि होते हैं।

साहित्य अकादेमी का प्रमुख उद्देश्य है—ऊँचे साहित्यिक प्रतिमान कायम करना, विभिन्न भारतीय भाषाओं में होने वाले साहित्यिक कार्यों को अग्रसर करना और उनका समन्वय करना, तथा उनके माध्यम से देश की सांस्कृतिक एकता का उन्नयन करना।

यद्यपि भारतीय साहित्य एक है, तथापि एक भाषा के लेखक और पाठक अपने ही देश की अन्य पड़ोसी भाषाओं की गतिविधियों से प्रायः अनभिज्ञ ही जान पड़ते हैं। भारतीय पाठक भाषा और लिपि की दीवारों को लाँघकर एक-दूसरे से अधिकाधिक परिचित होकर देश की साहित्यिक विरासत की अपार विविधता और अनेकरूपता का और अधिक रसास्वादन कर सकें, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए साहित्य अकादेमी ने एक विस्तृत अनुवाद-प्रकाशन योजना हाथ में ली है। इस योजना के अन्तर्गत अब तक जो ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, उनकी वृहद सूची साहित्य अकादेमी के विक्रय विभाग से निःशुल्क प्राप्त की जा सकती है।